दूसरी बार

आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड

श्रीकान्त वर्मा

मनोहरश्याम के लिए

दूसरी बार

एक

मेज पर एक अन्तर्देशीय लिफ़ाफ़ा पड़ा हुआ था। मैंने उठाया और लिखावट देखकर आश्चर्य और आश्चर्य से अधिक उत्सुकता हुई। अन्दर तीन-चार पंक्तियाँ थीं, जिनमें मिलने के लिए कहा गया था।

एक मेज पर अगर दो आदमी घण्टों मौन बैठे रहे और तय कर लें कि वह पहले अपना मुंह नहीं खोलेंगे, प्रतिपक्षी को अपना मौन तोड़ने पर मजबूर करेंगे, चाहे कितना ही समय लग जाए और कितनी ही तकलीफ़, तब मुद्दत बाद एक की चुप्पी टूटने पर दूसरे को जो आत्मविश्वास प्राप्त हो सकता है, कई साल बाद बिंदो की चिट्ठी पाकर मुझे वैसा ही अनुभव हुआ। फर्क यह था कि मैं और वह एक मेज़ पर नहीं बैठे थे। इस बीच मैं जाकर एक दूसरी मेज़ पर बैठ गया था।

मैंने जल्दी-जल्दी कपड़े बदले और छत पर आकर अपना शरीर सेंकता हुआ साफ-सुथरे आसमान की ओर देखा जहाँ एक ग्लाइडर सुख में चक्कर काट रहा था। कई दिनों बाद दिन मुझे अच्छा लगा।

सर्दियों के दिन थे और ग्यारह बज रहे थे। उसने मुझे यही समय

दिया था। मगर, मैंने सोचा, मुझे कुछ रुक जाना चाहिए ! मेरे पास कुछ नुस्खे है जिन पर अब मैं अमल करने लगा हूँ। स्त्री के पास समय पर पहुँचना अगर उसे नही तो उस समय को अपनी नियति मान लेना है। और औरो से अधिक अच्छी तरह यह बात स्त्रियां जानती हैं। अगर वर्षों तक मैं इस तरह हमेशा समय पर न पहुँचता होता तो मैंने इतनी तकलीफ न उठायी होती।

मैंने सोचा मैं कुछ दूर पैदल ही चल लूँगा और इस तरह मुझे कुछ देर हो जाएगी। मेरे लिए, कुछ समय पैदल चलना, अपने से नही, उससे बदला लेना है।

लगभग आध घण्टा देर कर जब मैं पहुँचा तो मैंने सोचा मुझे वह असतोष और गुस्से से देखेगी और तब मुझे अपने पर खुशी होगी।

पास पहुँचते हुए मुझे एक बार स्वयं पर अविश्वास हुआ कि मैं उसके घर जा रहा हूँ और एक क्षण को लगा मैं गलती कर रहा हूँ। मै एक पुरानी डायरी खोलने जा रहा हूँ जिसमे अपनी इबारत पढ़ने का आत्म-विश्वास मैं खो चुका हूँ। मगर जिस डायरी को मैं केवल एक सग्रह की वस्तु मानकर स्वीकार चुका हूँ उसे बेलाग खोलने मे कोई हर्ज नही। इबारत कैसी भी हो ! मैंने सोचा और आगे बढ गया।

मैंने उसे देखा तो मेरा खयाल गलत निकला। उसके मुख पर असंतोष नही था। केवल एक कठोरता थी और उसके भीतर क्या है समझ पाना मुश्किल था ! मेरे आने पर एक बार उसने मुझे देखा और अपनी जगह पर बैठी रही। उसने मुझसे बैठने के लिए नही कहा। मुझे यह देखकर भीतर कुछ खुशी भी हुई कि उसे अब भी विश्वास है कि इतने वर्षों मे भी यह समझौता टूटा नही है कि उसे कहना नही होगा, मैं खुद अपनी जगह ले लूँगा। मगर दूसरे ही क्षण मेरे मन मे प्रतिहिंसा उत्पन्न हुई, किस बूते

पर वह यह विश्वास करना चाहती है।

जब मैंने अपने-आपको एक अपरिचित और नवागंतुक की तरह पेश करते हुए कहा, क्या मैं बैठ सकता हूँ, तो उसने आँखें उठाकर देखा जिसमें शायद हिराकत भी थी और तकलीफ भी। शायद वह उम्मीद कर ही रही थी कि मैं उसके साथ ऐसा ही बर्ताव करूँगा।

उसने कुर्सी मेरी ओर बढ़ा दी थी और मैं उससे आँखें न मिलाने की कोशिश मे कमरे और कमरे की चीज़ों को देख रहा था जिनमें कहीं कुछ नही बदला था, केवल वह एक अकेलेपन से ग्रस्त थी।

शेल्फ पर मेरी नज़र गयी तो मैं कुछ चौंका। मगर यह सोचकर कि कही वह मुझे भाँप न ले मैंने फिर अपने को संयत कर लिया। मेरी तसवीर अभी भी रखी हुई थी जो उसे फेस कर रही थी। शायद उसने जानबूझ कर यह किया है। मैंने नज़र बचाकर उसे देखा और पाया कि उसकी आँखें खाली-खाली-सी हैं और उनमें कुछ नही है। मुझमें कुछ करुणा-सी उत्पन्न हुई। मगर मैंने फिर अपनी दृष्टि शेल्फ पर कर ली।

कई साल बाद अपने एक पुराने चित्र का दीख पड़ना एक चौंकाने वाला अनुभव है; खासकर किसी ऐसे चित्र का जिसके साथ कई आत्मीय प्रसग जुड़े हों। तसवीर से मोह होता है और मन विश्वास करना चाहता है मैं वही हूँ।

चित्र मैंने बिंदो के कहने से खिचवाया था। जब कभी मैं उसके कमरे में होता मुझे लगता मेरा चित्र मेरा और उसका गवाह है और मेरे हर व्यवहार पर नज़र रखता है। मैं जानता था स्नान के बाद जब वह कमरे में यहाँ-वहाँ अगरबत्ती सुलगाती है तो दो अगरबत्तियाँ मेरे चित्र के समीप भी।

'तुम बिल्कुल ही पिछड़ी हुई हिन्दू लड़की हो। इस जमाने में भी

चित्र पूजती हो। इससे तो अच्छा था मुझे पूजती।'

'पूजा नहीं, पवित्र बनाने की कोशिश, अपनी प्रिय मगर दुर्भाग्यवश अपवित्र चीजों को।'

शेल्फ पर रखा हुआ मेरा चित्र अगर इतने वर्षों बाद अब मेरी ओर मुड़कर देखे तो उसे अपने और मेरे बीच बहुत बड़ा फर्क दिखायी देगा और मुझे विश्वास है वह मेरी ओर से विमुख हो जाएगा।

बिंदो अब भी खाली-खाली आँखों से बाहर की ओर देख रही थी और मैंने अनुभव किया मेरे और उसके पास बात करने को कुछ भी नहीं है। मैंने आकर गलती की।

शायद उसने अपनी सहज बुद्धि से यह भाँप लिया था। जब नौकर चाय लेकर आया तो उसने कहा वह कुर्सियाँ बाहर लगा दे।

बाहर गरम धूप थी और वहाँ आकर मुझे कुछ उष्णता का अनुभव हुआ। एक बार फिर दिन ताजा और स्वस्थ लगा।

वह चाय तैयार कर रही थी। केतली सम्हाले हुए बिंदो की उँगलियों को मैंने देखा जो कुछ-कुछ कत्थई हो गयी थीं। उसका पुलोवर हरा था और लॉन की इस पृष्ठभूमि पर बढ़िया लग रहा था।

उसने चाय की प्याली मेरी ओर बढ़ा दी और तीन चम्मच चीनी डाल दी। वह भूली नहीं है। मैंने सोचा।

चाय की चुस्कियाँ लेते हुए जब दस मिनट हो गये तो मुझे ऊब का अनुभव हुआ। आखिर इस तरह कितनी देर चल सकता है। अगर यही सब होना था, और वह जानती है कि अब कुछ भी नहीं हो सकता, तो मुझे बुलाने की क्या जरूरत थी!

एकाएक मैंने उसकी ओर देखा और पाया कि वह मुझे देख रही थी। उसने मुझ पर से आँखें नहीं हटायीं, उसी तरह चाय पीती रही।

वह नही तो मैं। सारा समय उसे दोष देते बैठ रहना बेकार है। औपचारिकता की यह शुरुआत मैं भी तो कर सकता हूँ।

वह चाय की दूसरी प्याली तैयार कर रही थी। मुझे मालूम था वह बेमन कोई काम नही करती, रस लेकर और पूरी तरह करती है। चाय की एक प्याली उडेलते हुए वह अपने-आपको उडेल देती है। इस समय उसका चित्त उस ओर है और यही ठीक समय है! उसे भी अस्वाभाविक नही प्रतीत होगा।

'कहाँ रही?' मैंने धीरे से कहा।

वह चाय ढालती हुई रुक गयी जैसे उसके कान देर से मेरे प्रश्न का इन्तज़ार कर रहे थे! उसने कनखी से मुझे देखा, कुछ आशा और कुछ अविश्वास के साथ! क्या फिर मुझे छल रहे हो? फिर उसने अपने आँचल से अपना मुँह पोंछते हुए उत्तर दिया, 'पूना, पचमढी, अमृतसर।'

'अजीब कम्बिनेशन है! उत्तर, मध्य, पश्चिम।'

'किस सिलसिले मे?' मुझे कुछ उत्सुकता भी हुई।

'रिसर्च।'

'मगर रिसर्च तो तुमने छोड दी थी!'

'जब करने को कुछ न हो तो पुराना ही काम फिर से शुरू किया जा सकता है!'

'इस उम्र मे?' मैंने कहा और अपनी जीभ काट ली! आदमी की जबान उसके विवेक को धोखा देती है, बल्कि बदला लेती है! मुझे अफसोस हुआ और अपराधी की तरह मैंने अपना मुँह फेर लिया।

मगर, मैंने देखा, उसके चेहरे पर विकार नही था! शायद वह आहत नही हुई।

मैं हमेशा ही यह अनुभव करता रहा हूँ कि बिंदो की तुलना में मैं

ओछा पड़ता हूँ। मैं हमेशा ही अपने इस ओछेपन से घबराता भी रहा हूँ और अपने को समझाता भी रहा हूँ कि मैं ओछा नहीं हूँ। बहुत कम पुरुष यह जानते हैं कि वे जिसे ओछापन मानते हैं स्त्रियाँ उसी से प्यार करती हैं क्योंकि वे जानती है कि इसके पीछे एक सरलता है, धोखा न दे सकने की लाचारी है !

मैंने फिर अपने को गम्भीर और परिष्कृत प्रदर्शित करने की कोशिश की।

'लंच तो बाहर लोगी !'

'कहीं भी !' उसका यह 'कहीं भी' पुराना 'कहीं भी' था जिसका मतलब होता था इस वक्त मैंने अपने आपको तुम्हें सौंप दिया है। मुझे इस बात से घबराहट हुई। मैं विंदो की सड़क से उतर कर एक अलग गली में आ गया हूँ। अब फिर उसी सड़क को पकड़ना कुछ दूर जाकर फिर अनिश्चित हो जाना है।

वह अन्दर से,साड़ी बदलकर आ गयी थी और अपने दोनों हाथों से अपना ढीला, रूखा जूड़ा सँवार रही थी। मैंने उसे देखा और एक बार मुझे उससे मोह हुआ। मैं जानता था विंदो जैसी खूबसूरत स्त्री कहीं-कहीं होती है। इतना तराशा और सँवारा हुआ शरीर, बिखरता हुआ रंग और इतना नुकीलापन ! जब मैं विंदो को छोड़कर गया था तब मुझे गर्व भी हुआ था कि मैं एक इतनी सुन्दर स्त्री से भी असम्पृक्त हो सकता हूँ। बढ़िया धूप और लॉन में खड़ी हुई विंदो को देखकर मुझे उसके प्रति एक तीखा आकर्षण हुआ और अन्दर-ही-अन्दर एक मीठे सुख की अनुभूति भी कि यह शरीर बरसों मेरा रहा है और इसे मैंने नग्न देखा है !

जब वह चलने को तैयार मेरे करीब आ गयी तो बाहर सड़क पर आते हुए मुझे कठिनता का अनुभव हुआ। मैं उससे कुछ हटकर चल रहा

था और सोच नही पा रहा था कि मैं उसके सग किस तरह चलूं। जब सम्बन्ध स्पष्ट न हो तो यह निर्णय करना कठिन होता है कि किस तरह चला जाए, कुछ आगे या साथ या कुछ हट कर! अगर यह दुविधा न होती तो शायद मैं सडक से गुज़रती हुई टैक्सी को न रोकता, ठीक स्टैंड पर जाकर ही लेता! मगर इस परिस्थिति मे मुझे जैसे ही टैक्सी नज़र आयी, मैंने रोक दी और जब वह रुक गयी तो मुझे सचमुच ही बहुत बडा छुटकारा-सा मिला।

मैंने तेज़ी से टैक्सी का दरवाज़ा खोल दिया। मगर वह ठिठकी रही। मैं यह भूल चुका था कि हमेशा मुझे पहले बैठना होता था। और जब मैं बैठ जाता था वह मेरे बायीं ओर बैठती थी। इसलिए जब मैं उसी तरह खड़ा रहा था तो एक बार आँखें उठाकर उसने मुझे देखा। एक क्षण के सौवें भाग भर की तिलमिलाहट उनमें कौंधी जिसे तुरन्त ही उसने पी लिया।

बिंदो के साथ इन सडको पर और इस तरह मैं इतनी बार गुजरा था कि कुछ अर्से बाद तो सडकें ही मर गयी थी। मगर यह पहला अवसर था जब सड़कें मुझे अटपटी प्रतीत हो रही थी और लग रहा था मुझे जबर्दस्ती एक टैक्सी मे मेरे प्रतिद्वन्द्वी के साथ ठूंस दिया गया है।

सामने लगे आईने में मुझे बिंदो का चेहरा नज़र आ रहा था जिसमें फिर से उसका सयम वापस आ चुका था। शायद उसे कोई अडचन महसूस नही हो रही है। मुझे झुंझलाहट हुई। बिंदो के जाने के बाद मैंने उसके बारे मे एक बार नये सिरे से सोचा था और जैसे सतह की काई हटा देने के बाद एक दूसरा ही चेहरा उभरता है वैसे ही बिंदो का एक दूसरा ही चित्र सामने आया था! उन्ही बातो, उन्ही घटनाओं और उन्हीं मुद्राओं का अर्थ बदल गया था और मैंने पाया था कि बिंदो एक बहुत घमडी स्त्री

थी और उसका हर व्यवहार मुझे अपने से छोटा साबित करने की एक कोशिश थी। उसका संयम भी एक झूठा संयम था जो मुझे हर बार यह महसूस करने पर विवश करता था कि मुझमें कहीं कोई ठहराव नहीं है, केवल बिखराव ही बिखराव है और जब तक मैं अपने लिए एक ठीक-ठीक शक्ल प्राप्त नहीं कर लेता, उसके लायक नहीं हो सकता! यह अलग बात है कि वह मुझे सहन करती है! यह अनुभव करते हुए भी मेरे मन में बिंदो के प्रति विद्रोह होता था, भयंकर प्रतिहिंसा होती थी। मगर अन्त में मैं अपने को असहाय पाता था। आईने में उसका संयत चेहरा देखकर एक बार फिर मेरे मन में प्रतिहिंसा जागी और मैं बाहर बनी हुई इमारतें देखने लगा।

कुछ दूर जाकर एक सामने आती ट्रक से बच निकलने की कोशिश में टैक्सी एक झटके के साथ मुड़ी और बिंदो का शरीर लगभग मेरे समीप लुढ़क पड़ा। अगर आज से कुछ साल पहले यह हुआ होता तो मैंने फौरन ही उसे अपनी ओर खींच लिया होता बल्कि उसकी देह को अपने नजदीक कर लेने का एक बहाना मुझे मिला होता। मगर इस बार वैसा कुछ नहीं हुआ बल्कि मुझे गंध-सी आयी कि उसने जानबूझ कर ऐसा किया है। एक क्षण को वह मुझे घटिया स्त्री प्रतीत हुई।

कुछ समय बाद मैंने जब आईने पर दृष्टि डाली तो पाया उसका चेहरा ढला और बिखरा हुआ था जैसे टैक्सी के एक झटके में सारा बाँध टूट गया। मैं उसके इस चेहरे से अभ्यस्त नहीं हूँ। मैंने कुछ असमंजस, कुछ शर्म और कुछ दुख में अपनी निगाह नीची कर ली। मेरे और उसके बीच अकस्मात एक शोक आकर बैठ गया था।

जब टैक्सी रुकी और वह उतरी तो चलते हुए मुझे लगा जैसे मैं और वह अपने बच्चे की समाधि पर जा रहे हैं।

बच्चे का अहसास अधूरे स्त्री-पुरुषों मे एक अद्भुत आत्मीयता पैदा करता है जिसे वह अपनी तमाम बातचीत, कसमों, चुम्बनों और झगडों से भी प्राप्त नही कर पाते। मगर मृत सन्तान स्त्री-पुरुष को जोडती नहीं बल्कि चुपके-चुपके अलग करती है, अन्दर-ही-अन्दर एक दूसरे को अपनी असमय मृत्यु के लिए उत्तरदायी ठहराती है।

मैं उसे एक अच्छे मगर सादे रेस्तराँ मे लाया था! मुझ मे और बिंदो मे एक बात समान थी कि हम कभी पॉश रेस्तराँ में नही जाते थे। जाते वहाँ भी मध्यवर्गीय परिवार ही है मगर इस तरह डरे और दबे हुए भोजन करते हैं जैसे वे किसी भोज मे बिना बुलाये आ गए हों और सारा समय भय से जकडे हुए हो कि कही कोई उनसे उनका कार्ड न पूछ ले!

जिस मेज पर मैं और वह बैठा करते थे सयोगवश वह आज भी खाली थी बल्कि क़रीब-करीब सारा रेस्तराँ ही खाली था। केवल दो-एक मेज़ों पर कुछ लडके-लड़कियाँ बैठे हुए बेतकल्लुफी के साथ कॉफी पी रहे और लच ले रहे थे। बैरों मे से कई पुराने थे, मगर वे हम दोनो को शायद पूरी तरह भूल चुके थे। उन्होंने हमें उत्सुकता के साथ देखा, जैसे वे किसी नये युगल को देखते है और शक्ल से ही टिप भाँपने की कोशिश करते है।

सलाम कर बैरे ने मेज पर मीनू रख दिया था। अनायास मीनू बिंदो की ओर बढ़ा देने के बाद मैंने महसूस किया मैंने ग़लती की। आखिरी दिनो मे मुझे लगने लगा था कि मेरी सबसे बड़ी भूल यह थी कि हर चीज़ में फ़ैसला करने का अधिकार शुरू मे ही मैंने उसे दे दिया था। मगर तब तक बहुत देर हो चुकी थी और जैसे-जैसे मैंने दियें हुए अधिकारों को वापस लेने की कोशिश की, सम्बन्ध और भी बिगड़ते गये! आज फिर मैंने वही लापरवाही की और मेरी लापरवाही से बिंदो को एक बार फिर वही आत्मविश्वास प्राप्त हुआ होगा। पछतावे के साथ मैंने जब उसकी ओर

देखा तो पाया कि वह बैरे, मेज़ और आसपास की चीज़ों से उदासीन थी और अगर उसे कायदों का खयाल न होता तो शायद वह सामने पड़े मीनू पर नजर भी न डालती।

उसके चेहरे के रंग बदलते रहे और फिर एकाएक दुरुस्त होते हुए उसने पूछा, 'क्या लेंगे आप ?'

'आप !' मुझे एक झटका-सा लगा। इस एक शब्द के प्रयोग ने मुझे एक झटके के साथ उठाकर फेंक दिया था।

मगर उसके प्रश्न से एकबारगी पिटकर जब मैंने उसे देखा तब वह बिना किसी मलाल मुझे देख रही थी। उसने फिर उसी सहजता से मुझसे पूछा, 'आप क्या लेंगे ?'

वह जानती थी मेरे पास उसके प्रश्न का कोई जवाब नहीं था। उसने बैरे को उंगली के इशारे से बुलाया और धीरे-धीरे आर्डर करने लगी।

जब बैरा मेज पर सारी चीज़ें रख गया तो मैंने देखा मेरी सारी मन-पसंद डिशें वहां थी। मगर उसे कैसे विश्वास है कि इस बीच मेरी पसंद नहीं बदली है ! मैंने देखा वह कनखी से मुझे देख रही थी। मैंने सामने रखे चिकन की ओर इशारा करते हुए बैरे से कहा, 'इसे वापस ले जाओ।' जब बैरा चला गया तो उसने मुझसे धीरे से पूछा, 'क्यों ?'

'मेरा पेट ठीक नहीं रहता।' उसे मालूम था कि मैं झूठ बोल रहा हूँ। इन सारी चीजों में मुझे सबसे अधिक पसन्द चीज चिकन है। और पेट अगर सचमुच ही गड़बड़ होता तब भी मैं उसे पसन्द करता।

'कब से ?'

मैंने उसकी ओर निगाह की। क्या वह मुझ पर व्यंग्य कर रही है ? एक बार मेरी इच्छा हुई मैं उससे कह दूँ, तुम्हारे जाने के बाद से। मगर वह आराम के साथ नॉन का एक टुकड़ा तोड़ रही थी।

दुःख-सुख, हर्ष-विषाद, हर हालत मे स्त्रियो को तन्मयता के साथ भोजन करते हुए देख मुझे हमेशा चिढ होती है और कुछ-कुछ डाह भी होता है।

अपनी कुढन दबाते हुए मैंने उत्तर दिया, 'कुछ दिनों से!'

'डॉक्टर को नही दिखाया!' उसने उसी तरह निवाला करते हुए कहा।

'दिखाया था!' मेरी चिढ बढती जा रही थी।

'क्या कहता है डॉक्टर?'

मुझे लगा मैं झल्ला पड़ूँगा और जरूर कुछ-न-कुछ बक दूंगा।

मगर मुझे झल्लाना नही है, नाराज नहीं होना है, उतावला नही होना है और स्त्री के सामने रोना नही है। ये वे पाठ हैं जो विंद्रो मुझे पढा गयी है।

'कुछ खास नही!' मैंने धैर्य के साथ कहा और बातचीत के बढते हुए सिलसिले को बीच मे ही समाप्त कर भोजन करने लगा।

आखिर वह चाहती क्या है? जाहिर है वह मेरे पास फिर से नही आयी है। मैंने उसे ढकेल कर बाहर नही किया था, वह अपनी इच्छा से, अपने संकल्प से गयी थी। वह नही, मैं रोया था। उसने नही, मैंने मनाने की कोशिश की थी। फिर वह क्यों आयी है? क्या वह अपनी स्त्री-दृष्टि से यह देखने आयी है कि उसके बिना मैं किस तरह रह रहा हूँ? मूर्ख!

उसने अपना भोजन समाप्त कर लिया था और शायद बडी देर से मुझे निहार रही थी।

जब मैंने बैरे को बुलाकर बिल के लिए कहा तब उसने बीच में ही रोक कर कहा, 'कॉफी!'

कॉफी ढालकर उसने प्याली मेरी ओर बढा दी थी। सामने बैठे हुए

लडके-लडकियों का गिरोह उठकर चला गया था। कम-से-कम जब तक वह था ध्यान दूसरी ओर करने के लिए मेरे पास एक साधन था। रेस्तराँ मे बिल्कुल अकेले बैठे हुए मुझे और भी घुटन हो रही थी। कभी-कभी शोर, घटिया सगीत और भीड भी ज़रूरी चीज़े मालूम पडती हैं। अगर इस जगह एक मूक वाक्स होता तो शायद मैं कुछ देर और इस परिस्थिति मे भी बैठ सकता था।

दोपहर को देर से भोजन करने पर मुझे सिर मे दर्द होता है। जब मैं बाहर आया तो वह हमेशा का दर्द फिर शुरू हो गया था। पेवमेंट पर चलते हुए एक फूल वाला लडका पीछे हो लिया।

'मोतिये की बहार! बीबीजी गजरा!'

उसने पर्स से एक चवन्नी निकाली और गजरा ले लिया। शुरू-शुरू मे मैं उसे गजरा लेकर सड़क पर रुककर कभी वेणी में और कभी कलाई मे गजरा पहनाया करता था और मुझे गर्व होता था। मैं सोचता था कई लोग मुझे डाह से देख रहे होंगे। बाद मे भी जब भी वह गजरा खरीदती मैं ही उसकी कलाई में बांधता और तमाम कलह के बाद भी वह मुझे मुग्ध होकर निहारती!

मैंने उसे स्टैंड पर पहुँचा दिया था। मगर मेरी समझ में नही आ रहा था, मैं क्या कह कर उससे बिदा लूँ! जब वह बैठ गयी और मैं बिना कुछ कहे ही जाने को हुआ तो उसने मुझसे कहा, 'सुनिये, आप कुछ देर और नही रुक सकते?'

'नही रुक सकता!' एक बार मेरी इच्छा हुई मैं उससे साफ़-साफ कह दूँ। मगर मैंने उसकी आँखो में देखा और पाया वह सचमुच चाह रही थी कि मैं कुछ देर रुक जाऊँ।

'कहाँ चलना है?' मैंने बगल में बैठते हुए कहा।

'किसी भी तरफ !'

अगर 'किसी भी तरफ' जाना था तो वह गयी क्यों थी ? फिर मुझे ही निर्णय लेने देना था ।

'कुतुब !' मैंने बिना कुछ सोचे ड्राइवर से कह दिया।

वह बार-बार गजरा अपनी कलाई मे लपेट रही थी और उससे खेल रही थी ।

मुझे यह जानना है कि वह मुझसे बात क्या करना चाहती है। कई साल बाद अपनी इच्छा से बिंदो आकर मेरे कटघरे मे खडी हो गयी है। मैंने उसके लिए कोई वारट जारी नही किया था, कोई इश्तिहार नही छपवाये थे। बल्कि उसके आने के पहले यह कटघरा भी नही था। वह अपने साथ स्वय अपना कटघरा लिये हुए आयी है।

नवम्बर और दिसम्बर के दिनो मे कुतुब पर आने वालों की भीड बढ़ जाती है। लेकिन मैं यहाँ अप्रैल और मई के महीनो में भी आया हूँ, जब कही कोई नही होता। गुमसुम खंडहरो और परित्यक्त झाड़ियों मे से गरम हवा छन कर आती है और सारा संसार बिल्कुल सूना प्रतीत होता है। ऐसे में अपने जीवित होने का अनुभव अधिक व्यक्तिगत होता है। इन झाड़ियो मे बिंदो के पास पड़ा हुआ मैं सोचता था, अगर इधर से कोई गुज़रे तो एक बार ठिठक जाएगा और उसे भ्रम होगा कि झाड़ी के अन्दर कोई नर-चीता मादा-चीता से जूझने के बाद उसे दुलारता हुआ थका पड़ा है।

पिकनिक वालों की भीड़ आज भी थी। मैं उनसे कतराता हुआ बढ गया और कुछ दूर जाकर घास पर बैठ गया! उत्साही नवयुवक-नवयुवतियाँ अपने आपको कुतुब की पृष्ठभूमि पर खड़ा कर कैमरे से एक दूसरे की तसवीरें खींच रहे थे। एक गाइड कुछ विदेशी टूरिस्टों के साथ लगा

हुआ था। और लॉन पर बैठी हुई कुछ स्त्रियाँ सतरे खाती हुई छिलके यहाँ-वहाँ छितरा रही थीं।

बिंदो मेरे पास आकर बैठ गयी थी। उसने अपना पुलोवर उतार कर घास पर रख दिया और अपनी साड़ी का पल्लू ठीक कर रही थी, जो बार-बार उसके कधों से फिसल जाता था।

'चाय पीनी है?' उसने सामने रेस्तराँ की ओर देखते हुए मुझ से सवाल किया।

'नही! मेरे सिर मे दर्द है।'

'ओह!' उसने कहा और चुप हो गयी। फिर उसने बंगल के ग्रूप की तरफ देखा, जिन पर से होती हुई धूप गुजर रही थी। उसने अपनी कलाई मे बधी घडी देखी और कहा, 'आपकी घड़ी मे क्या वक्त हुआ है?'

'पाँच पन्द्रह!'

'ओह! यह कुछ आगे है!'

मैं फिर चुप रहा। बातचीत का यह छोटा-सा सिलसिला वहीं समाप्त हो गया। कुछ देर मौन रहने के बाद उसने कहा, 'उठें!'

लेकिन जब मैं उठा तब भी वह बैठी हुई थी। एक क्षण उसने मुझे देखा। फिर उसने अपना पुलोवर उठाया और चल पड़ी। उसकी चाल में तेजी आ गयी थी। साथ चलते हुए उसने कहा, 'मुझे कुछ बातें करनी थी।'

'बातें! कई साल तक बातों के अलावा और क्या हुआ! अब क्या बात हो सकती है!' मैंने तिलमिलाकर कहना चाहा।

'मै रुक सकता हूँ!' मैने अपने को रोकते हुए कहा।

'नहीं। कोई जरूरत नहीं!' उसकी चाल में और भी तेजी आ गयी थी।

घमडी औरत ! मुझे उससे इस तरह चिढ हो रही थी कि मैं सोच रहा था, किस तरह सवारी मिले और मैं उससे पीछा छुड़ाऊँ !

थोडी ही दूर पर गाडी मिल गयी। बैठने हुए मैंने जमुहाई ली और अपनी जगह पर करीब-करीब पसर गया। वह अलग बैठी रही। जिंदगी मे पहली बार उसके पास बैठकर मुझे अनुभव हुआ मैं उससे छोटा नही हूँ। जब टैक्सी उसके घर के पास जाकर रुकी तो उसने उतरते हुए कहा, 'देखिये, मुझे आपसे एक माफी माँगनी थी।'

मैं सब कुछ देख रहा था। जब उसने मुझसे माफी की बात कही, तो मैंने उत्सुक आँखों से देखा ! मेरे मन मे उस समय उसके प्रति कुछ दया उत्पन्न हुई। इसके पहले कि यह दया छलक कर बाहर आए उसने अपनी चतुर और संवेदनशील आँखों से मेरे अन्दर झाँक लिया था।

'मेरे कारण आपको आज सारा दिन कष्ट हुआ।' और वह मुडकर चली गयी। एक मिनट को उसने मुझे हतप्रभ कर दिया।

फिर धीरे-धीरे अपने को सुस्थिर करते हुए मैंने खिड़की के बाहर देखना चाहा, क्या अब भी उसकी चाल मे तिलमिलाहट है या शिकस्त ? मगर उसमे कुछ भी न था ! केवल वापसी थी।

घर वापस आकर मैंने अपना कमरा रोशन किया और नौकर से कह दिया कि मेरी तबियत खराब है वह मेरे लिए खाना न बनाये।

कपड़े बदल कर मैंने बत्ती बुझा दी और बिस्तर पर लेट गया। तीसरे तल्ले की उस खिड़की के नीचे, सड़क पर मोटरों के हॉर्न, पुकार, धीमी और ज़ोर की बातचीत—तरह-तरह की आवाज़ों का आर्केस्ट्रा था, जो बज रहा था। अन्दर के अंधकार और बाहर के शोर के किनारे पडा हुआ मैं बहुत दिनो बाद बेचैनी का अनुभव कर रहा था, एक ऐसी बेचैनी जिसे

केवल स्त्री का शरीर ही अपने अन्दर दुह सकता था। स्त्री का शरीर प्राप्त करना मेरे लिए उस समय ही नही, किसी भी समय, आसान था! मगर अपने को दे देने का डर उससे बडा था।

दो

सवेरे देर से उठने पर आँख में कड़ुवाहट थी। कमरे के बाहर, खिड़की से चिड़चिड़ायी हुई नजर डाली और आँख मूँद ली। सिर भारी था।

रजाई के भीतर बेचैनी थी। रजाई मैंने पैरों से पलंग के किनारे फेंक दी और तकिये में सिर गड़ा सीने के बल सोने की कोशिश की।

मगर नींद के बजाय गुजरे हुए दिन की पटकथा याद आने लगी।

मैं इस तकलीफ से कई बार गुजरा हूँ। मैं जानता हूँ नरक क्या होता है!

जो भी हो! तैयार होने के पहले सिर का दर्द मिटाना जरूरी था। नौकर से मैंने कहा, 'दो टिकियाँ ले आये।'

'एनासिन या एस्प्रो?'

'कुछ भी!'

उठ कर मैंने अपना सिर नल के नीचे रख दिया। ठण्डा पानी बालों से निथुरकर गरदन और पीठ पर चलने लगा। शरीर में सर्दी और दिमाग में ठण्डक!

कुछ जल से, कुछ दवा से और कुछ अपने इरादे से शरीर ने फिर स्फूर्ति का अनुभव किया। धूप का स्पर्श पाने की इच्छा हुई। चल कर कही कॉफी पीनी चाहिए। कहाँ ?

कही भी !

इस जुमले ने मुझे चौका दिया। यह उस का था।

सडक पर चलते हुए मैने अपनी टाई ठीक की और अपने मे मशगूल गुजरता गया। दोनो तरफ बाजार है। थोड़े-थोड़े फासले पर चायघर है। लेकिन मै और दिनो की तरह इन सब को पीछे छोड़ता गया। जब तमाम छोटी-छोटी दूकानो का सिलसिला समाप्त हो गया तब मै सवारी का इन्तजार करता हुआ राह के किनारे खडा हो गया।

ज़रा-सी दूर पर बस-स्टॉप था जहाँ लम्बी 'क्यू' लगी हुई थी ! सडक पर साइकिलो का ताँता था। इस जगह दफ्तराना अन्दाज़ से सुबह होती है और घरेलू तर्ज पर शाम !

शाम को जितनी मुर्दनी होती है सवेरे उतनी ही गरीबी !

इस वक्त कुछ भी नही मिलेगा ! एक बार इच्छा हुई 'क्यू' मे जा कर खड़ा हो जाऊँ !

आगे निकल कर सवारी पकड़ने के इरादे से मैं चल पड़ा। मेरे आगे एक लड़की थी। पर्स दबाये चली जाती थी। बीच-बीच मे मुड कर पीछे देखती जाती थी।

ज़रा चलने पर सुस्त चाल से चला जाता स्कूटर नजर आया जिसे मैंने लपक कर पकडा।

कनॉट प्लेस के एक परिचित रेस्तराँ मे मैं घुस गया। यहाँ का अँधेरा अच्छा लगता था। यह अँधेरा जरूरत पडने पर एक दूसरे को नजदीक ला देता है और मौका पड़ने पर दीवार बन कर खड़ा हो जाता है।

शौकीन लड़के-लड़कियों का गिरोह जगह-जगह बैठा हुआ था। उन की बात-चीत फुसफुसाहट की तरह लगती थी।

कोने की एक टेबल पर मेरे तीन परिचित बैठे हुए थे। मुझे अपनी ओर मुखातिब देख, उन्होंने कहा, 'यहां आ जाओ।'

मेरी ओर से कोई उत्तर न पा उनमें से एक, जिसे मैं सबसे कम समय से जानता था, उठ कर मुझ तक आया।

'कोई आने वाला है ?' उसने मुझ से सवाल किया। मैंने झांक कर देखना चाहा। उसकी आंखों मे बदमाशी तो नही !

'नही।' मैंने कहा और मेरी समझ मे नही आया मैं उसके साथ कैसा वर्ताव करूँ। उसे बैठने के लिए कहूँ, उससे कॉफी के लिए कहूँ, या क्या ? उसने मुझे उलझन मे निकाल लिया। वह खुद ही लौट चुका था। तीनों फिर मशगूल हो गए थे। मैंने आराम का अनुभव किया और पीछे पत्थर की दीवार से टिक कर बैठ गया।

बैरे को कॉफी के लिए कह कर मैं फिर उसी तरह दीवार से टिक गया था और आँखें बन्द कर ली थी। आस-पास के स्त्री-पुरुषों की महक और सुरीली हँसी धीरे-धीरे बदन मे समाने लगी और अब पहली बार महसूस हुआ सुबह हो रही है।

फिर अचानक मैंने आंखे खोली। ध्यान आया, शायद कोई मेरे इस व्यवहार को देख रहा हो। अपने देखे जाने का खयाल कांटे की तरह चुभा। मगर सब अपने-अपने मे लगे हुए थे।

सामने की टेबल पर चार लडकियां थी, जिन के ढग से ही लगता था कि वे चार लड़कियां है। पडोस में एक युगल था, जो प्रेमातुर था। एक दूसरे पर मुग्ध था। दायी ओर एक विदेशी और एक हिन्दुस्तानी था, जिनकी टेबल नाश्ते की चीजो से भरी हुई थी।

मेरे सामने मेरी कॉफी रखी हुई थी, जो, छूकर मैंने देखा, ठण्डी हो चुकी थी।

मैंने ठण्डी हो चुकी कॉफी प्याली मे उडेली और स्वाद से पीने लगा। कॉफी पीते-पीते स्थिरता आयी और अनुभव होने लगा मैं यहां अजनबी नही हूं, इस परिवार का एक सदस्य हूं। मैं बरसो बाद यहां आया हूं— जब आता था तब परिवार मे ही आता था!

क्या वह अब भी यहां आती है? अपने सामने खडे बैरे को देख कर, जो दुबारा ऑर्डर की प्रतीक्षा में था, झुंझलाहट हुई। दरवाजा खुला और फरफराती हुई साडियो की महक और चूडियों की खनक रेस्तरां मे तैर गयी।

'और कुछ नही चाहिए!' मैंने बैरे से कहा। मैंने सोचा वह चला जाएगा। मगर उसने शायद मेरी बात सुनी नही। वह दूसरी ओर देखने लगा था।

'सुनो!' मैंने झुंझलाकर कहा, 'बिल ले आओ!'

बैरा अपनी रोजमर्रा चाल से बिल लाने चला गया।

मुझे चिढ हो रही थी, जैसे मेरी खिडकी के शीशे को किसी ने तोड़ दिया हो। मैंने एक बार फिर घूरकर बैरे की ओर देखा और उसे बिल लाता देख कर और भी क्रोध हुआ।

'रुक जाओ!' मैंने कहा, 'कॉफी और ले आओ।'

बैरा कॉफी लाने वापस चला गया।

पहले की भीड चली गयी थी। दूसरी भीड ने पहले की जगह ले ली थी। जगह पहले से ज्यादा गुलजार हो गयी थी। लेकिन उस वक्त बहुत से लोगो का वहां होना मुझे अच्छा नही लगा। करीब-करीब सभी अपरिचित थे। जिन दिनों मैं आता था, उन दिनों भी दिन के साढे ग्यारह

बजे यहाँ भीड़ हो जाया करती थी—मैं हर आकृति को पहचानता था। मगर यह एक दूसरा ही ससार था, जो भरभराकर रेस्तराँ में समा गया था।

कॉफी पीने के बाद इतमीनान से बैठूँ, तब तक मेज़ के करीब कॉफी वालों का एक जत्था आकर मेरे उठने का इन्तज़ार करने लगा। इस तरह के दृश्य अक्सर नजर आते हैं जब चार आदमी एक आदमी से उठने का गुमसुम तकाजा करते हैं और एक आदमी असम्पृक्त जुगाली करता बैठा रहता है।

बाहर रोशनी मे आते ही, ससार फिर अपनी जगह लौट आया। निरुद्देश्य घूमने के सिवा कोई काम नही था। कनॉट प्लेस का एक पूरा चक्कर काटने के बाद समझ मे नही आया, कहाँ जाऊँ!

जनपथ पर इस समय ज्यादा चहल-पहल होती है। स्त्रियाँ होती है जिन्हे सारा दिन बाजार करने के सिवा कोई काम नही होता। जवान लडकियाँ होती है जो अपनी बडी और छोटी छातियो को पैकेटों और बडलो से दबाये हुए इस दूकान से उस दूकान डोलती हैं या बीच-बीच मे कोकाकोला पी लेती है।

जनपथ पर टहलते हुए अचानक एक दूकान पर रुका। तरह-तरह की साडियो की बहार थी, जो खरीदारों के आकर्षण के लिए ही बाहर लटकायी गयी थी। बेबात ही इच्छा हुई कि उन्हे एक बार छू लूँ।

'अन्दर आ जाइये।' दूकानदार ने हाँक लगायी और मैं अपनी नादान इच्छा को कुचलता हुआ आगे बढ गया।

जनपथ की दूकानों के आखिरी छोर से लौटते हुए कोफ्त और बढ गयी। सब लोग खा रहे हैं, पी रहे हैं, दोस्तो के साथ है या पढ़ रहे हैं! इस समूचे नगर मे मैं अकेला आदमी था जो बेमतलब, बेबुनियाद वक्त

बिता रहा था।

मैं खुश होने के लिए बाहर निकला था। मगर इस समय केवल दो बजे थे। अभी सारी दोपहर और सारी रात पड़ी थी।

घर जाने के खयाल से दहशत हुई। एक बार तबीयत हुई कुछ वक़्त लायब्रेरी में जाकर बिताऊँ। मगर यह इच्छा भी मर गयी। ऐसा नहीं है कि ऐसा पहली वार हुआ हो। पहले भी ऐसे ही, ठीक ऐसे ही होता था। मगर इस बीच दुनिया पाने और खोने से आगे निकल चुकी थी। प्लेटफार्म से ट्रेन को गुज़रे इतना वक़्त बीत चुका था कि यह अहसास ही मर चुका था कि गाड़ी कभी यहाँ रुकी थी!

कनॉट प्लेस के घेरे में दोबारा फँस कर मैं ठीक उसी जगह पहुँचा जहाँ पिछली दोपहर, इसी वक़्त उसके साथ खाना खाया था। दिल एक बार धड़का। हाथ कोट की जेब में गया और मेरी अंगुलियों में फँसा बिंदो का खत निकल आया जिसके बाद से और जिसकी वजह से यह सारा सिल-सिला शुरू हुआ था।

मैंने खत को खोल कर एक बार फिर पढ़ा और मुझे उसकी लिखावट बनावटी जान पड़ी। पटरी से उतर कर सड़क पर आते हुए मैंने उसे फाड़ा और उसकी चिंदियाँ हवा में उड़ने लगीं। काश! ये चिंदियाँ उसके घर तक उड़ती हुई उसके मुँह पर जा पड़तीं। टुच्ची!

मैंने तेज़-तेज़ सड़क पार की और लॉन पर आ गया जहाँ कुली-कबाड़ी और निठल्ले गपशप में मस्त थे या पड़े हुए थे! मैंने एक किनारे पर जाकर अपना रुमाल बिछा दिया। कुछ देर बैठने के बाद अपना कोट उतार कर मुँह पर डाल लिया और धूप में पड़ गया। और कार्यक्रमों से यह बेहतर था।

जब धूप सीने से उतर कर पैरों में होती हुई दूर चली गयी तब सर्दी

महसूस होने लगी। फिर वही घिनौना अंधकार सिमट रहा था। वहां से उठ कर कोट पहना और कनॉट प्लेस की भीड़ में घुसते हुए बुदबुदाया, 'मैं इस चक्रव्यूह से कभी नहीं निकल सकता!' एक विदेशी युगल मेरे कन्धों को छीलता हुआ ठाठ से आगे निकल गया था।

आखिर विंदो चाहती क्या है? कुहरे के बढ़ने के साथ-साथ मेरी चिढ़ भी बढ़ती जाती थी।

फ़ैसला करना ही होगा। मगर, टैक्सी पर बैठते हुए, मैंने खुद से कहा, 'क्या फ़ैसला पहले ही नहीं हो चुका था!'

टैक्सी विंदो के घर के करीब जब रुकी तब मैंने पाया, उसके कमरे में रोशनी थी। मैं ठीक वक़्त पर पहुँचा था। मुझे उससे केवल एक वाक्य कहना था, 'तुम यहाँ क्यों आयी हो!' मैं अहाते के भीतर घुसा। और वहां पहुँचते ही, मुझे एकाएक यह अहसास हुआ, मैं पागलों जैसी हरकत कर रहा हूँ। यहाँ आने की क्या सचमुच ही कोई ज़रूरत थी? अगर उसने मुझे देखा तो क्या समझेगी? शायद वह सब, जो मैं नहीं चाहता! उसकी आंखें चमक उठेंगी!

मैं मुड़ा और बाहर आ गया। खिड़की से उसकी आकृति साफ नज़र आती थी। वह हमेशा की तरह बुनने में व्यस्त थी। उसके चेहरे पर स्थिरता थी।

दगाबाज़! मैं बुदबुदाया और जल्दी-जल्दी दूर निकल आया। अच्छा ही हुआ। धीरे-धीरे सब छँट जायेगा और शान्ति वापस आ जायेगी।

अब चल कर कहीं खाना खाना चाहिए और घर पहुँच कर कोई पुस्तक पढ़नी चाहिए। लगभग दो मील पैदल चल कर घर पहुँचा तो रात काफ़ी हो चुकी थी। नौकर झुँझलाया नज़र आता था। मैं उससे कुछ भी

कह कर नही गया था—शाम खाना खाना है या नही ! हो सकता है उसने अपने लिए भी कुछ न बनाया हो । मगर मैं उस वक़्त मुक्त और उत्फुल्ल था । बिंदो की स्थिरता ने मुझे भी स्थिरता दे दी थी और मैं सोच रहा था यह सारा तनाव व्यर्थ है ! मैं अपनी जगह ठीक हूँ ।

मैंने जेब से निकाल कुछ पैसे नौकर को दिये और कहा, वह बाहर खा आये । उसके चले जाने के बाद मैं जूते उतारे बिना पलंग पर पड गया । मुझे लगा अब मैं अच्छी तरह हूँ । अब नीद मे कोई खलल नही होगी । नौकर अभी बाहर गया ही था कि वापस आ गया ।

'आप का फोन था !' वह मुझे बताना भूल गया था ।

'किसका था ?' मैने पड़े-ही-पडे सवाल किया ।

'नाम नही बताया ।'

मैंने अपने तमाम परिचितो की फहरिस्त दोहरायी । समझ नही पाया फ़ोन किसका हो सकता था । सहसा दिमाग मे बिजली कौंधी और मैने उठते हुए पूछा, 'मर्द था औरत ?'

'कोई बाईजी थी ।'

'ओह !' मैंने कहा । नौकर फिर बाहर चला गया । जाते-जाते मैंने उससे पूछा, 'क्या कहा था, दोबारा फ़ोन करने के लिए कहा था ?'

'कुछ कहा नही था ।'

मै जानता था यह बिंदो का फोन था ! उसके फ़ोन करने के खयाल से मुझे खुशी हुई । मै अपनी खुशी में सीटी बजाने लगा ।

ऐसा नही हो सकता फोन दोबारा न आये । बिंदो से एक बार परिचित होना हमेशा के लिए परिचित होना है । मगर वह मुझसे कहेगी क्या ? वह मुझसे क्षमा मांगेगी, यह खयाल मुझे और भी उत्फुल्ल करने लगा ।

वैसे मै अब तक सो चुका होता। मैने उठ कर स्टोव जलाया और कॉफी के लिए पानी रख दिया। अपने लिए कॉफी बनाने मे कई साल बाद रस आया। कॉफी में स्वाद था भी। घडी देखी तो दस बज चुके थे। जैसे छुट्टियों मे रिजल्ट का इन्तजार होता है और छुट्टियाँ दूभर हो जाती है वैसे ही मुझे फोन की घंटी घनघनाने का इन्तजार था।

मुझे पक्का विश्वास था कि अगर मैं विंदो को जरा भी जानता हूँ तो यह फोन जरूर आयेगा। मगर, मैंने देखा, करीब ग्यारह बज चुके थे। मैं अपनी जगह से उठा और कमरे में बेचैन टहलने लगा। बाहर बिलकुल चुप्पी थी। पुलिस का सिपाही बिजली के खम्भे के पास खडा अपने कोट का कालर खडा कर अपने को सर्दी से बचा रहा था।

अगर वह उसका फोन नही था तो किस का था ? और उसने मुझे फोन किया क्यों ? मुझे उसके चेहरे की स्थिरता नजर आयी और अब की बार मैंने महसूस किया वह नकली थी।

फोन मैने पलंग के नज़दीक ही खिसका लिया और अन्धे आदमी की तरह उसका नम्बर घुमाया। मैं जानता था वही आयेगी। जब उसने रिसीवर उठाया तब मैंने उससे सीधे-सीधे सवाल किया, 'फ़ोन तुमने किया था ?'

'नही !' उसने छोटा-सा उत्तर दिया। मुझे लगा उसने मुझे पलंग से नीचे जमीन पर पटक दिया। ज़मीन से उठ कर पैंट झाड़ते हुए मैंने तम-तमा कर कहा, 'तुम झूठी हो !'

'जी !' इस बार उसके स्वर में विस्मय था। मै जानता हूँ कि अगर यही बात मैंने उन दिनो कही होती तो उसने ओठ टेढे कर कहा होता, 'आपको यही शोभा देता है।' और यह कह उसने फोन रख दिया होता। मगर इस बार उसका अन्दाज़ ऐसा था गोया गलत नम्बर मिल गया हो।

रिसीवर पकडे हुए मेरी अंगुलियाँ काँप रही थी। मैंने थरथराते हुए स्वर में कहा, 'आखिर तुम चाहती क्या हो ?' मुझे लगा इस प्रश्न के साथ ही मैं थक गया हूँ और बूढ़ा हो गया हूँ। दूसरी ओर से न कोई उत्तर आया न रिसीवर रखने की आवाज।

'जवाब क्यों नही देती ? तुम चाहती क्या हो ?' मेरे कण्ठ से अधिक मेरी शिराओं में क्रोध था जिसे व्यक्त करना कठिन था।

'और कुछ कहना है।' उसने छोटा-सा निर्विकार उत्तर दिया। मुझे लगा मैं फिर चित कर दिया गया हूँ। अबकी बार उठने का साहस मुझ में नही था।

'आपने बताया नही !' उसने उसी लहज़े में कहा।

मैंने रिसीवर रख दिया और पलंग पर पडे-ही-पडे जूते और कपडे उतार कर दोनो ओर कुर्सियो पर फेंक दिये। मुझे बरछियों से छेदा जा रहा था और मैं बिंदो के लिए तमाम गालियाँ निकाल रहा था।

टुच्ची ! धोखेबाज ! झूठी ! बेईमान।

किसी औरत को गाली देने के बाद लज्जा का अनुभव होता है। मगर बिंदो के लिए यह सब निकालते हुए ऐसा कुछ भी नही हुआ।

गालियाँ दे चुकने के बाद तटस्थ होते हुए मैंने पाया ये वे गालियाँ नही थी जो परायी स्त्री को दी जाती हैं बल्कि वे थी जो अपनी स्त्री को दी जाती हैं।

तीन

यह मेरे कठिन दिनो की कहानी है। मैं नही जानता बिंदो के लिए ये दिन कैसे थे !

सब कुछ हो चुकने के बाद अब मैं अच्छी तरह इस निष्कर्ष पर पहुँच चुका हूँ कि मैं अपने अन्दर एकदम अनिश्चित और क्लीव हूँ। बाहर से मैं कैसा भी लग सकता हूँ ! कई ढग हो सकते हैं। और केवल ढंग देखने वाले, मुझे पता है, मेरे बारे में गलत नतीजों पर पहुँच सकते हैं। वे मुझ से दब भी सकते हैं, पराजित भी हो सकते हैं।

मगर बिंदो मेरे हर पुर्जे से भली-भांति परिचित थी। उसे पता था, कहाँ घुमाने से क्या होता है। मैंने अपने बारे में बहुत सोचा है और उसने मेरे बारे मे कभी नही सोचा। मगर मैं अपने को जितना जानता हूँ, वह मुझसे अधिक मुझे पहचानती थी।

कोई मुझे जानता है, यह खयाल डर पैदा करता है। मैं उन दिनों को नही भूल सकता जब बिंदो से टूटते हुए, यह डर मेरा जरूरी अंग बन गया था। आखिरी बार, अलग होने के पहले उसने कहा था, 'मैं अच्छी तरह

समझती हूँ, तुम क्यों घुटने टेकते हो। अगर मैं तुम्हें जानती न होती तो तुम कुछ और होते!'

मेरे और उसके बीच हजारो बातें हुईं। मगर उसका यह एक मुहावरा मुझे कभी नहीं भूलेगा। उसने इतना बड़ा सच कहा था कि इस एक सच के लिए कई झूठ माफ किये जा सकते है।

अपने आपको खोलते जाना और आखिर मे यहाँ तक नंगे हो जाना कि बीच मे कुछ भी न रहे, इससे ज्यादा खतरनाक खेल कुछ भी नही होता। मैं शुरू मे ही नंगा हो गया था। मुझे उसके सामने अपने तमाम कपड़े फेंकते जाने की जल्दी थी। जितनी जल्दी यह खेल शुरू हुआ उतनी ही जल्दी खत्म हो गया। अकेले रह जाने पर अपनी नग्नता पर शर्म आती है। मेरी शर्म भी बिंदो के चले जाने पर शुरू हुई थी।

वह केवल शर्म नही थी। उसमे क्रोध भी था। उसके जाने के बाद ही मुझे महसूस हुआ कि उसने मुझे नंगा किया था।

यह दूसरी रात थी जब मुझे नींद ठीक से नही आयी थी। सवेरे आँख लगने पर देर तक सोता रहा था। आँख खुलने पर पाया कि एक दूसरी ही दुनिया में जाग रहा हूँ। कमरे की तमाम चीजें वैसी की वैसी थी—केवल इस छोटी-सी जगह मे एक भयानक रिक्तता समा गयी थी।

दिमाग जितना खाली था, दिल उतना ही भरा हुआ था। नींद से कोई फर्क नही पड़ा। पहले अपनी घृणा को व्यक्त कर देने के बाद तसल्ली हो जाया करती थी। मगर शायद मुझी में कोई बहुत बड़ा असर आ गया था—मवाद को निचोड़ देने के बाद मवाद फिर भर गया था।

कमरे में यहाँ-वहाँ सिगरेट के टुकड़े थे। सिगरेट जो मैंने गुस्से और नफरत में पी थी। अपना ही कमरा डरावना प्रतीत हुआ। क्षण-भर को लगा मुझ पर चढ बैठेगा।

नौकर वैसे सफ़ाई कर रहा था। वह इतने आहिस्ता और निःशब्द झाड रहा था कि उसका ढग और दिनो से कुछ अलग जान पडा। क्या उसने जान लिया है? मैंने आँख उठाकर उसे देखा और पाया वह अपनी चाकरी मे मगन है। उसकी सबसे बडी समस्या धूल है!

हर रोज सवेरे अखबार वाला अखबार फेंक जाता है। मैं पहला काम यही करता हूँ। एक अखबार के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा। सवेरे के दो-ढाई घण्टे इसी मे चले जाते है। पिछले दो दिनों के अखबार, जिन्हें न मैंने देखा था, न देखने की उत्सुकता थी, बोझ की तरह रखे हुए थे।

मैले कपडे एक किनारे पडे हुए थे। बिस्तर में सलवटें थी, जैसे किसी ने बुरी तरह कुचल दिया हो। मैंने एक-एक चीज़ पर गौर किया। हर चीज़ अपनी जगह बेतरतीब और गलत थी। मैं खुद गलत था।

अपने गलत होने का ख़याल भी सात्वना देता है। मगर इस वक्त मुझे सात्वना की जरूरत है या क्या—इसका निर्णय कर पाने की स्थिति मे मैं नही था।

अपने को सँवार कर बाहर निकलते हुए मैंने सकल्प किया कि मै इस तरह चलने नही दूँगा।

बीमार पडने पर आदमी डॉक्टर, हकीम, वैद्य के पास जाता है। मैं, जो बीमार था भी और नही भी, कहाँ जाऊँ! महँगी से महँगी फीस देकर भी अगर मैं इस सबसे छुटकारा पा सकता हूँ, तो मैं तैयार हूँ!

मेरी सारी कहानी एक आदमी जानता है। मैं नही चाहता था कि वह मेरा गवाह बने—मगर वह था! दोष मेरा नही था। यह विदो के सोचने की बात थी। मगर जाते-जाते वह सारा सब उसके आगे खोल गयी थी। यह नही कि उसे आभास नही था। शायद उसे पता था, ठीक-ठीक पता था! उसे शुरुआत भी मालूम थी और आखिर भी। वह

जानता था कि मोड़ कैसे आये! मगर मेरा या बिंदो का बयान लेने में उसने कभी कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी थी।

शायद उसके मौन ने ही मुझे और बिंदो को आकर्षित किया था। मैं भी यह जानता था और बिंदो भी यह जानती थी कि इस रिश्ते की बारीकियों को उससे अधिक और कोई नहीं समझ रहा है।

फिर भी, मैंने अपनी ओर से, इस कई वर्षों में फैले हुए सम्बन्धों की उलझनें अनिल को कभी नहीं बतायी।

अजब संयोग है कि जब मैं फूटने को था, वह फूट पड़ी। अगर बिंदो कुछ रोज और रुक गयी होती तो मैंने ख़ुद ही सारी बातें अनिल को खोल दी होतीं। शायद वक़्त आ चुका था। और मेरे पास इसके सिवाय कोई रास्ता भी नहीं था कि बिंदो से टूटने के पहले की सारी परेशानी का गवाह किसी को बना सकूं। मगर बिंदो ने, जो कभी जल्दबाजी नहीं करती थी, अपनी जल्दबाजी से मुझे बचा लिया।

मुझे अब भी लगता है अगर बिंदो ने अनिल से कह न दिया होता और अगर अनिल ने मुझे यह न बताया होता कि बिंदो ने उससे कह दिया है तो यह रिश्ता अन्तिम रूप से न टूटता।

मगर शायद वह कहना चाहती ही थी। वह कहकर मुक्त होना चाहती थी। कहते ही उसने अपना ओहदा ऊँचा कर लिया था। वह अनिल से यह कहने गयी थी कि अब आगे नहीं चल सकता और यह कि वह मुझे खबर कर दे!

मैं अब अच्छी तरह समझता हूँ कि उसने यह बात सीधे-सीधे मुझसे न कह, अनिल के जरिये क्यों कही। वह चाहती तो आकर मुझसे ही साफ़-साफ़ कह सकती थी। मैं जो भी रहा होऊँ, वह भीरु नहीं रही!

मगर वह संकल्प करना चाहती थी। शायद मेरी विह्वलता उसे

सकल्प न करने देती।

कोई यह विश्वास नहीं करेगा कि आदमी स्त्री के पैरों पर गिर भी सकता है। दूर जाने के भय ने, अकेले हो जाने की आशका ने सम्बन्ध-काल मे मुझे कई बार उसके पैरो पर गिरने को विवश किया। अगर मैं पैरो पर न गिरता तो वह जाती भी नही। बार-बार गिर-गिर कर मैंने उसे इतना उठा दिया था कि आखिरी दिनो में उसकी एकमात्र हथकडी मैं हो गया था।

यह और भी विचित्र बात है कि मेरे गिरने से न केवल वह बडी हो जाती थी, बल्कि अपनी नजर में मैं स्वय बडा हो जाता था। मुझे लगता था यही मेरी शक्ति है।

उसने मेरी इस शक्ति को पहचान लिया था—इसके पहले कि मैं कातर होऊँ, उसने एक झटके मे तोड दिया और एक तीसरे आदमी के आगे अपने को मुक्त करते हुए विच्छेद को दस्तावेज मे बदल दिया।

अनिल की जगह का फासला अधिक नही था। सुबह के इस वक़्त वह तैयारी कर रहा होता है। मैं जब पहुँचा तब वह हीटर जलाये हुए अपने को सेंक रहा था। सुबह से सर्दी कुछ ज्यादा थी। बाहर धुध थी और आसमान भी साफ न था। हो सकता है बारिश हो।

कई महीनो बाद इस तरह मुलाकात करते हुए मुझे संकोच हुआ। कमरे मे घूमते हुए एक बार इच्छा हुई, लौट चलूँ। मगर मैंने हिम्मत कर, गोया कोई जुर्म करने जा रहा हूँ, पैर आगे बढा दिये।

आरामकुर्सी पर बैठे ही बैठे गरदन मोड़ उसने मुझे देखा। मुस्कुराया।

'तुम्हें दफ्तर तो नहीं जाना है ?' मेरा सवाल बेहूदा था।

'क्यो, क्या तुम्हें जाना ?' उसने मुझे ठीक वैसा ही जवाब दिया।

'आज की छुट्टी ले सकते हो ?'

'बात क्या है ?' वह अपनी जगह से उठा और कुर्सी मेरी ओर खिसका ली।

वह मेरी हुलिया देख रहा था। मेरे कपड़े ठीक थे, बाल भी सँवारे हुए थे, जूतों पर पालिश थी और टाई भी गलत नहीं थी। मेरे बजाय वह बेतरतीब था। वह ऊपर पुलोवर पहने हुए था और नीचे तहमद बाँधे हुए था। पैरों में मोजों पर चप्पलें थीं। लगता है उसने अभी मुँह भी नहीं धोया था।

'इतमीनान से बैठो।' मैंने पाया वह मुझे उत्सुकता से देख रहा है।

अक्सर इस तरह की उत्सुकता मुझे घिनौनी लगती है। दूसरों के कमरों में भाँक कर देखने की प्रवृत्ति मैंने अधिकतर लोगों में पायी है—यहाँ तक कि लोग चलते-चलते पराये घरों की खिड़की में मुँह डाल देते हैं। उन्हें लगता है भीतर शायद ऐसा कुछ है जिसमें नाटक है या तमाशा है, जिसे चूक कर वह बहुत कुछ चूक जाएँगे।

अनिल इस मामले में, आखिरी बार को छोड़, हमेशा औरों से भिन्न रहा है। उसने यह जानने की कभी कोशिश नहीं की कि कहाँ नाटक है, कहाँ भाँका जा सकता है ! मेरी और उसकी दोस्ती का यह बहुत बड़ा, शायद अकेला आधार था कि जब तक मैं न कहूँ वह अपनी ओर से शुरुआत नहीं करेगा।

मैं हमेशा से यह चाहता रहा हूँ कि कोई मुझे न उघाड़े। अगर निर्वसन होना ही है तो मैं स्वयं अपने टाँके खोलूँ—किसी और के दबाव में नहीं बल्कि स्वयं अपने दबाव में।

दूसरे के दबाव से अधिक चिढ़ मुझे किसी और चीज़ से नहीं। हर बार विदो ने मुझे नगा होने पर विवश किया। इतना दबाव, इतना अधिक दबाव कि लगता था कधे टूट जाएँगे और मैं पूरी तरह बिखर जाऊँगा।

जरा भी दबाव महसूस होते ही लगता था मेरी स्वतन्त्रता पर पहरा फिर शुरू हो गया।

अनिल से मिलकर छुट्टी का अनुभव होता था—किसी तरह का आग्रह नहीं, माँग नहीं। वह तो उन्मुक्त था ही, मैं भी उन्मुक्त हो जाता।

'मुझे कुछ जरूरी बातें करनी हैं!' मैंने कहा और शंका भरी दृष्टि से उसे देखा।

'पहले चाय पियो।' उसने उसी सुविधा के साथ कहा।

वह स्टोव पर पानी रखने चला गया। कमरे में हर चीज सलीके से रखी हुई थी।

अनिल का कमरा देख हमेशा यह धारणा पक्की होती थी कि सलीके से रहने का ठेका केवल परिवारियों का ही नहीं। अकेला आदमी किस तरह तमीज से रह सकता है, इसकी तमीज मुझे अनिल से सीखनी चाहिए थी—न कोई अपव्यय, न कोई तनाव।

'बात ही तो करनी है, न! मैं दफ्तर देर से चला जाऊँगा।"

असल में मैं उससे कहना चाहता था कि क्या वह आज का दिन मेरे साथ नहीं बिता सकता!

'बारिश के आसार हैं।' अनिल ने उसी बेफिक्री से कहा। 'बारिश हुई तो सर्दी बढ़ जाएगी। ग़रीबों की मुश्किल है!' वह अपने आप से बात किये जा रहा था।

'हाँ, मुश्किल है।' मैंने बेमन उसकी बात में शामिल होने की कोशिश की।

'हर मौसम में गरीब ही मारा जाता है—गर्मी में लू, बरसात में बारिश, सर्दी में पाला।'

मैं चुप था। वह पानी खौला रहा था।

'अपने देश का मौसम ही ऐसा है कि कुछ नहीं हो सकता। आधी जिन्दगी मौसम से लड़ने में गुज़र जाती है।' वह अपनी ही बात में रत था। मुझे हल्की-सी झुंझलाहट हुई। मगर, मैंने चालाकी के साथ सोचा, मुझे उसकी शर्तें निबाहनी चाहिए। आखिर मैं यह उम्मीद क्यों करूँ कि वह मेरे मामले में वैसी ही दिलचस्पी लेगा जैसी कि मैं ले रहा हूँ। वह क्यों उतावला हो। वैसे ही उतावलापन उसके स्वभाव में नहीं। मेरी जगह वह होता तो अपने को इस तरह न खोता। उसके लिए स्त्री समूचा संसार नहीं—दुनिया की विशाल पार्श्वभूमि में हजारों आकृतियों में से महज एक आकृति है। उसका ढांचा मुझसे बिल्कुल अलग है—यह मैं जानता हूँ और इसके लिए मैं न उसे दोषी ठहरा सकता हूँ न अपने आपको!

'चीनी कितनी लोगे?' उसने मेरी आँखों में आँखें डालते हुए कहा।

क्या वह मुझे तोल रहा है? मैंने पलक उठाकर उसे देखा। वह अब तक अपना प्रश्न थामे हुए था।

'दो चम्मच!' मैंने घबराकर कहा। घबराकर कुछ और न कह देने के भय से अपने को संयत करने के प्रयत्न में मैंने कहा, 'मुझे तुमसे कुछ बातें करनी हैं।'

'मुझे पता है।' अनिल ने चाय की चुस्की लेते हुए कहा, 'मौसम इतना खराब है कि अपनी बनायी चाय तक अच्छी लगती है!'

वह मेरी बात टाल गया। क्या वह मुझे बेवकूफ समझता है। वह बिल्कुल इतमीनान से चाय पी रहा था। उसने अपना पुलोवर कुछ खिसका लिया था। उसके चेहरे से लगता था चाय का असली मज़ा वही ले रहा था। हर बार वह चाय इस तरह सिप करता जैसे मुझसे कहना चाहता हो, तुम चाय पीना नहीं जानते। मुझे देखो। मैं कैसे मजे में हूँ!

मुझे अनिल पर दोबारा चिढ़ हुई। उस जैसा मेधावी व्यक्ति मेरी

बेचैनी को न समझ पाये यह नामुमकिन था। फिर वह इस तरह बर्ताव क्यों कर रहा है ? वह क्यों मुझे नज़रअन्दाज कर रहा है ? कहीं वह मुझसे कतरा तो नहीं रहा !

'जब ज़बान कुछ कहने को छटपटा रही हो तो उस पर मिसरी रख दो। वह बात की बजाय मिसरी का रस लेने लगेगी।' कई साल पहले उसी की कही हुई बात मुझे याद आयी। शायद वह मुझे कुछ कहने से रोक रहा था।

उसे भ्रान्ति है। शायद वह सोच रहा है कि मै उससे बाहरी समस्याओं पर किताबी बाते करूँगा और वह ऊबता और जमुहाई लेता रहेगा। ऐसी हर एकतरफा बहस के बाद वह मुझसे कहता था, 'हर सवाल, अपना सवाल है। उसमे दूसरा कोई दखल नहीं दे सकता।' यह कहकर वह मेरी सारी सम्पत्ति बिखरा देता था।

'मैं आज बहस करने नहीं आया हूँ।' मैंने कहा।

'शादी की बात करने आये हो ?' वह मुस्कराया।

'इस समय मेरा मज़ाक का मूड नहीं।' मैंने कहा। मैंने सोचा मेरा गम्भीर स्वर सुन वह भी गम्भीर हो जाएगा।

'तो मैं कौन मज़ाक कर रहा हूँ।' अपनी प्याली मे चाय डालते हुए पूछा, 'चाय और लोगे ?'

'नहीं !' मैंने अपनी प्याली रख दी थी।

'ले लो। गर्मी कुछ और आ जाएगी।' मैंने कोई उत्तर नहीं दिया।

अनिल का शरीर रौबीला था—तहमद मे कुछ और रौबीला हो गया था। उसके देह की बनावट पर दृष्टि फेरते हुए मैं सोच रहा था, कहाँ से शुरू करूँ।

'मौसम की वजह तुम कुछ और भिड़ी हो गये हो।' उसने अपनी बेत-

कल्लुफ आलोचना से मेरा ध्यान भंग किया।

'मुझसे ज्यादा तुम हो गये हो। तुम्हें किसी की बात सुनने की फुर्सत ही नहीं।' मैं सचमुच नाराज़ हो चला था। 'मैं घंटे भर से यहाँ बैठा हूँ। देख रहा हूँ तुम्हें मौसम और चाय को छोड़ तीसरी किसी चीज में दिलचस्पी ही नहीं।'

'और है क्या दिलचस्पी लेने के लिए?' हमले को केवल एक वाक्य में टाल देने का कौशल अनिल के पास शुरू से था। और शायद इसीलिए वह सुखी भी था।

वह अपनी जगह से उठ इस्तेमाल किये हुए बर्तन ट्रे पर रखने में लग गया था। उसे स्त्री होना चाहिए था। वह एक-एक चीज इतने सलीके से बटोर रहा था कि गृहिणी की सधी हुई अँगुलियों का धोखा होता था।

'बूँदाबादी हो चली है।' उसने चीख कर कहा। मैंने देखा सचमुच बूँदें गिर रही थीं।

'मैंने कहा था न, बारिश होगी।' वह अपनी भविष्यवाणी सच निकलने पर खुश था।

मुझे बिंदो से अधिक अनिल पर क्रोध आ रहा था। वह मेरे साथ खिलवाड़ कर रहा था। वह जानता है मैं उद्विग्न हूँ—इसीलिए वह इतना निर्विकार है। एक आदमी का आत्मबल दूसरे की आत्महीनता पर निर्भर करता है।

उसने मेरी हलचल को भाँप लिया था। बर्तन सजाकर वह करीब आकर बैठ गया। उसने अपनी सिगरेट सुलगा ली थी, मैंने अपनी।

'इतने दिनों क्या किया।' उसने मेरे और करीब आते हुए कहा।

'भाड़ झोंका।'

'कहाँ?'

'यही।'

'मैं सोचता था कहीं बाहर चले गये।'

'बाहर क्यों जाता।' मैंने हैरानी से उसे देखा।

'यों ही!' वह मज़े में सिगरेट पी रहा था।

'शादी का ख़याल बिल्कुल छोड दिया!' उसने उसी इतमीनान से सवाल किया।

'हां।'

'मैं सोचता था तुम इस बारे मे फिर से सोचोगे और अपना फैसला बदलोगे।'

'यह कम से कम तुम्हें तो नही सोचना चाहिए था।' मेरा तीखा उत्तर सुनकर उसके ओठों पर हल्की-सी मुस्कराहट खिच आयी। फिर उसने एक निहायत घटिया हरकत की—अपने ओठों को सिकोड़ा और धुएँ का एक छल्ला बनाकर आसमान की ओर उछाल दिया। छल्ला कुछ ऊपर उठा, फिर पतला होकर विलीन हो गया।

अपनी सिगरेट एशट्रे मे बुझाकर मेरे नज़दीक खिचते हुए उसने कहा, 'तुम शायद कोई ख़ास बात करना चाहते थे।'

'नही।' मैंने चिढकर कहा।

वह फिर व्यग्य करता हुआ-सा मुस्कराया। 'अच्छा जाने दो।' उसने कहा, 'अगर तुम्हें नही करनी है, तो मुझे करनी है!'

'तुम्हे मालूम है?' वह रुकता हुआ-सा बोला।

'क्या?'

मुझे अचानक ही अपने प्रति उत्सुक देख उसकी आँखें चमकी।

'तुम्हे मालूम है—विदो यही है!'

मैं अपनी जगह पर करीब-करीब उछल पड़ा। मुझे हडबड़ाया हुआ

देख वह आश्वस्त हुआ। अपनी जगह पर जम गया।

'तुम्हें मालूम होगा !' उसने कनखी से मुझे देखा।

'तुम्हें कैसे मालूम !' मैंने सम्हलते हुए कहा।

'तुमसे मिली थी ?' उसकी चुप्पी पर प्रहार करते हुए मैंने दोबारा सवाल किया।

'नहीं !' उसने सख्त-सा उत्तर दिया, 'दिखी थी !'

'कहाँ ?'

'रीगल के नजदीक !'

रीगल के नजदीक बहुत-सी दूकानें है, सिनेमा हॉल है और दो-एक अच्छे रेस्तराँ है, जहाँ जाना उसे पसन्द था। मगर वह अकेली कभी नहीं जाती थी। हमेशा मेरे साथ। वह कहती भी थी, 'अकेले यह सड़क पार करते हुए मुझे भय होता है—मुझे बराबर यह खयाल होता है कि मैं एक दिन यह सँकरी-सी सड़क पार करते हुए ही मरूँगी—कुचल दी जाऊँगी।'

'किसी के साथ थी ?'

उसने मेरे स्वर की घबराहट भाँप ली और मेरे स्वर पर अपना स्वर बिछाते हुए कहा, 'अगर हो भी तो तुम्हें क्या करना है !'

'किसके साथ थी ?' मेरा स्वर कठोर हो चला था।

'अकेली थी। मगर तुम इतने बेताब क्यों हो रहे हो !'

मुझे चुप पा उसने सिलसिला आगे बढाया। 'जो भी हो, तुम्हें क्या फर्क पड़ता है। मुझे तो इसी पर हैरानी है कि तुम इतने परेशान क्यों हो रहे हो।

दूसरी ओर देखते हुए मैंने महसूस किया अनिल में बहुत अन्तर आ गया है। पहले की बात नहीं रही। पहले वह मुझे नंगा नहीं देखना चाहता था। मुझे नंगा देखने के ख़याल से ही उसे दहशत होती थी। अब वह मुझे

कुरेद रहा है। मुझ में झांक रहा है !

मैंने वितृष्णा से अपना मुँह फेर लिया। बाहर अभी भी बारिश हो रही थी। खिड़की का शीशा धुँधला हो गया था। मौसम बिलकुल मनहूस था और अनिल की सगत मे पहली बार मुझे काँटे महसूस हो रहे थे।

'कॉफी पियोगे ?' उसने हम दोनों के बीच छा गया सन्नाटा तोड़ा।

'यह बारिश अब बन्द नही होगी !' वह अपने आप कहे जा रहा था। 'सर्दी मे बारिश होती है तो मुझे हमेशा घुटन-सी होती है—न दफ्तर मे काम करने की तबीयत होती है, न घर पर पड़े रहने मे शान्ति मिलती है। मगर बजे कितने हैं ? मैं दफ्तर कैसे जाऊँगा !'

मुझे लगा अनिल कायर है—आम है। दफ्तर, घर और वह खुद ! उसकी दुनिया इतनी छोटी है। शायद उसने छोटी कर ली है। पहले ऐसा नही था। मगर उसके चेहरे पर चिन्ता नहीं थी। मैंने पाया वह निश्चित बैठा हुआ था। शायद वह मुझे यह महसूस कराना चाहता है कि मैं उसका वक़्त बरबाद कर रहा हूँ। मैंने गौर से उसे देखा।

जब मैं उठने लगा तब उसने मुझे टोका। 'इतनी बारिश मे कैसे जाओगे !'

'चला जाऊँगा।'

'अभी थोड़ी देर मे पानी बन्द हो जाएगा तब चले जाना।' जब उसकी बात अनसुनी कर मैं आगे बढ़ा, तब उसने कहा, 'इस वक़्त अगर तुम चाहो भी तो उससे मुलाकात नही हो सकती।' यह मुझ पर बिलकुल क्रूर व्यंग्य था ! मैंने देखा उसका चेहरा अचानक सख्त हो गया था !

और मौकों पर वह अपने तनाव को ढीला कर लेता था और सहज हो जाता था। मगर इस वक़्त वह मेरा सामना कर रहा था ! 'मुझे सब पता है !' उसने अपनी जगह पर बैठे-ही-बैठे कहा।

'क्या पता है ?' मैं जानता था कि उसे कुछ पता नहीं।

'यही कि वह तुमसे मिली थी।'

उसके जवाब ने मुझे चकित नहीं किया। मुझे मालूम था कि वह अन्दाज कर रहा था, मुझे टटोल रहा था। एक बार मेरी इच्छा हुई मैं कहूँ, 'तुम बेवकूफ हो!'

'तुम्हारी हुलिया बता रही है कि तुम उससे लडकर आये हो!'

मुझे कुछ भी टिप्पणी न करते देख उसे आश्चर्य हुआ—शायद उसने सोचा होगा कि मैंने इतनी शक्ति कैसे सँजो ली।

सडक पर पानी में भीगते हुए मैंने सोचा कि मैं अनिल से दीक्षा लेने आया था, मगर उसे सबक सिखाकर जा रहा हूँ। मेरे निकलते-निकलते वह चिल्लाया था, 'ठहरो, मैं भी चलता हूँ।' मगर मैं आगे बढ आया था!

पानी में भीगते और भागते हुए टैक्सी पकडना मेरे लिए कोई नयी बात नहीं। कितनी ही बार इसी तरह, ऐसी ही ठंड और बारिश में, उसे किसी दुकान या आड में खडा कर मैंने दौड कर टैक्सियां पकडी हैं और टैक्सी में बैठने के बाद रूमाल से अपने सिर और चेहरे का पानी पोंछा है। इस तरह की हरकत अजीब होती है, आदमी खुद अपने को 'हीरो' लगने लगता है! मैं भी कई बार 'हीरो' बना हूँ।

मगर अनिल के मकान से निकल कर पानी में काफी देर भीगने के बाद मैंने अपने को 'हीरो' नहीं बल्कि बेवकूफ अनुभव किया। अगर मैं दस मिनट रुक ही जाता तो क्या बिगड जाता! मुझे क्या जल्दी पडी थी? आखिर मैं अचानक क्यों निकल पडा!

जब टैक्सी-स्टैंड तक पहुँचने पर टैक्सी मिली तो भीतर बैठते हुए मैंने सोचा, 'मैंने अनिल के अलावा खुद को भी नुकसान पहुँचाया है।'

'रीगल,' मैंने कहा और टैक्सी दूसरी तरफ मुड गयी! मेरे कपडे खराब हो चुके थे। मगर मैं घर कतई नही जाना चाहता था। बारिश भी थम रही थी।

लगातार दो घंटे वर्षा से सडक सुनसान हो गयी थी। होटलों मे उपस्थिति लगभग नही के बराबर थी। मैं एक होटल के बरामदे में खडा हुआ बारिश पूरी तरह बन्द होने की प्रतीक्षा करने लगा। वैसे पानी से मुझे कोई उकताहट नही थी! अगर वर्षा दिन-भर भी होती रहे तो मेरा क्या।

बाहर फुटपाथ बिल्कुल नंगी थी। पान-सिगरेट सजाने वालो का कहीं ठिकाना नही था! अन्दर थोडे-से लोग चाय या अखबार पर झुके बैठे थे।

'रीगल के नजदीक!'

'किसी के साथ थी?'

'अगर हो भी तो तुम्हे क्या करना है!'

मेरी और अनिल की बातचीत अब भी मुझे खटखटा रही थी। ऐसा कैसे हो सकता है। अकेले जाना बिंदो की आदत नही। उसे हमेशा साथ चाहिए। एक ऐसा साथ जो उसे नही दूसरे को सालता है। उसका रुग्ण सहवास उसे नही दूसरे को घोंटता है। वह संग से नही, अकेलेपन से भागती है।

उसका यह कहना केवल विनोद नही था कि 'मुझे अकेले सडक पार करते हुए भय होता है!'

शायद उसके अकेलेपन ने ही मुझे उसकी ओर आकर्षित किया था। यदि वह और लड़कियों की तरह जुड़ी हुई होती तो मैं उसकी ओर नहीं खिंचता। शुरू में ही मैंने समझ लिया था कि उसके अकेलेपन को भेद कर

उसमे पैठना मुश्किल है।

यह मेरी और उसकी पहचानी हुई जगह थी। जब तबीयत बहुत प्रसन्न होती, वह ठीक इस इमारत के आगे रुक जाती। मैं समझ जाता यह पान का इशारा है। उसके लिए मुलायम पान का बीड़ा बनवा मैं उसे देता। पान स्वीकार करते हुए उसकी आँखों मे हल्की-सी झिडकी होती। मुझे स्मरण आता मैं किमाम लगवाना भूल गया था। फिर से उन बीड़ो पर किमाम लिपटवा जब मै उसकी ओर आता तो पाता वह अपनी जगह से आगे बढ़ गयी है!

पानी बिल्कुल थम गया था। लोग सडकों पर निकलने लगे थे। सडक के बीचोबीच और किनारों पर यहाँ-वहाँ रफ्तार के साथ पानी भागा जा रहा था। आसमान में बदलियाँ अभी तक थी। ठंड पहले से और बढ गयी थी। मैं अपने भीगे कपडो को शरीर से चिपकाये हुए था। अगर कमीज गीली होती तो कोई बात न थी। मगर पानी हजम कर कोट वजनी हो गया था और ठड मेरे शरीर मे घुसी जा रही थी।

मै सडक पर आया। बाहर आते ही गरमागरम चाय की इच्छा हुई। चाय से न केवल यह ठंड जाती रहेगी बल्कि मैं कुछ तन्दुरुस्त भी अनुभव करूँगा।

इर्विन रोड पर कुछ छोटी-छोटी दूकाने है जहाँ मैं अब भी अपने बहुत अकेले क्षणो मे जाता हूँ। इन जगहों मे जाते हुए किसी अपरिचय की भावना नही होती क्योकि यहाँ अपना कोई परिचित नही होता। बिल्कुल गरीब तबका यहाँ आता है—जहाँ चाय पर या केवल बैठने के लिए बहुत खर्च नही करना पडता।

सड़क पर बहते हुए रेलों को लाँघता, अपने को बचाता एक छोटी-सी दूकान में घुस मैंने इतमीनान महसूस किया। काँच के गिलास में भरी हुई

चाय सिप करने से शरीर में कुछ गर्मी ग्रायी। बिंदो को ग्रब भी यह नहीं मालूम कि मैं इन जगहों पर ग्राता हूँ। ग्रगर पता होता तो वह इसी बात पर मुझसे हिकारत करती। यह नहीं कि उसे वर्ग द्वेष है, बल्कि यह कि एक ग्रर्से तक उसे विश्वास रहा कि मुझे गदगी ग्रौर ग्रस्वच्छता को पालने का शौक है। मैं इससे इंकार भी नहीं कर सकता कि बिन्दो के सम्पर्क में ग्राने पर ही मुझे पहली बार ग्रपना ग्रहसास हुग्रा था। उसके पहले मैं हो कर भी नहीं था। कपडों से लेकर बालों तक का सलीका बिंदो के बाद से ही शुरू हुग्रा था।

पानी में भीगने से हरारत-सी हो ग्रायी थी। साधारण स्थिति में मैं पड़ गया होता। मगर पिछले दो दिनों की दुनिया में जूझते हुए मुझमें एक ग्रनोखा सकल्प पैदा हो गया था—लगता था मैं एक ग्रौर ही दुनिया में ग्रा गया हूँ जिसमें हर चीज़ मेरे विरुद्ध है ग्रौर जैसे-जैसे मुझे यह मालूम पड़ता जा रहा है कि कुछ भी मेरे ग्रनुकूल नहीं वैसे-वैसे मैं दृढ होता जा रहा हूँ।

लेकिन सारी दृढता, सारा संकल्प क्षण-प्रवाह मात्र होता है। कोई मामूली दृश्य, कोई साधारण घटना विचलित कर जाती है ग्रौर फिर सब कुछ भग हो जाता है। कई बार इसकी भी ज़रूरत नहीं पडती—ग्रपने ग्राप ही सब कुछ बिखर जाता है।

चाय देने वाले लडके ने रेडियो तेज़ कर दिया था जिससे फिल्मी धुनें कानों के पर्दों से टकराने लगीं। पुकार बाहर थी, मगर लगता था चीख़ ग्रन्दर है। ग्रचानक ही मेरे ग्रन्दर कोई चीज़ हडबडाने लगी थी ग्रौर ग्रभी क्षण-भर पहले की दृढ़ता घहराने लगी। मैंने फिर प्रयत्न कर ग्रपने को समग्र किया ग्रौर बाहर की गूँज ग्रौर भीतर की पुकार को कुचल कर शान्ति का ढोंग करता चाय पीता रहा।

अपना कोट मैंने उतार कर बगल में रख दिया था और टाई ढीली
दी थी। हालांकि इससे बदन को और भी सर्दी लग रही थी, मगर भ
हुए कोट का वजन ढोने से यह अच्छा था।

दिन के ढाई बज गये थे, मगर मौसम के कारण पता नहीं चलता
कि दोपहर भारी हो गयी है। पैसे चुका कर मैं उस छोटी जगह से बा
आया। आसमान अब भी साफ नहीं था। लगता था बारिश फिर होगी
दोपहर कितनी सूनी हो सकती है, इसका सब से तीखा अनुभव दिल्ली
ही किया जा सकता है, जहां लोग मौसम अनुकूल होते ही बाहर भि
भिनाते लगते है और प्रतिकूल होते ही पता नहीं कहां गायब हो जाते हैं

घर पहुंचते-पहुँचते एक अजीब-सी व्यर्थता ने घेर लिया था। लग
था न अन्दर कुछ है, न बाहर कुछ ! मैं एक अनत शून्य मे हाथ-पैर
रहा हूँ। अवसाद, छोटा शब्द है। इससे बहुत आगे, जहाँ अवसाद भी
है। पता नहीं क्या है।

बैठा हुआ नौकर मेरी प्रतीक्षा कर रहा था या ऊँघ रहा था, मैं
जानता।

उसकी उपेक्षा करता हुआ मैं अन्दर गया और पाया सोफे पर
हुई बिंदो ताश के पत्ते बिछाये हुई थी।

चार

बिंदो को अपने घर पर पा एक साथ कई अनुभूतियाँ हुईं। गर्व, घृणा, सुख, प्रतिहिंसा और आश्चर्य! चेहरे पर कई परछाइयाँ आयीं। बिंदो ने मुझे देखा और पहले की तरह ताश के पत्ते बिछाती रही।

मैंने उससे कुछ भी नहीं कहा और कपड़े बदलने भीतर चला गया। बाथरूम में वैसे मुश्किल से दो मिनट लगते हैं। मगर मैंने जान-बूझकर देर लगायी। साफ और सूखे कपड़े पहनकर और अपने को सजा कर जब मैं लौटा तब वह पत्ते समेट चुकी थी।

मैं दूसरे कोने की कुर्सी पर बैठ गया जो उससे इतनी दूर थी कि मैं बड़ी आसानी से उसकी उपेक्षा कर सकता था। उसकी निगाहें दूसरी तरफ थी—या तो वह उस ओर लगा कैलेंडर देख रही थी या मुझसे मुँह मोड़े हुए थी।

'कितनी देर हुई?'

'बहुत नहीं।' उसने अपना मुँह दूसरी ओर किये हुए ही जवाब दिया। मैं समझ गया वह झूठ बोल रही है। उसे आये जरूर काफ़ी वक़्त बीत

चुका है। वह बारिश में आयी थी। उसकी साड़ी यहाँ-वहाँ भीगी हुई थी। एक बार इच्छा हुई, कहूँ, 'सुखा लो!'

खाने का मौसम गुजर चुका था। इस समय उससे भोजन के लिए कहने में बनावट होगी।

'क्या पियोगी?'

उसने नज़र उठाकर मुझे देखा, फिर कहा, 'मैंने चाय के लिए कह दिया है।'

उसने सचमुच कह दिया था। नौकर ट्रे पर चाय की चीजें लिये आ रहा था। वह मेरे करीब की मेज पर रखने ही लगा था कि विंदो ने टोक-कर कहा, 'इधर!'

उसका इशारा उसके पास पड़ी तिपाई की ओर था। शायद वह चाय के लिए उठकर मेरे पास आना नहीं चाहती थी।

उसने इतने अधिकार के साथ चाय अपने करीब लाने का हुक्म दिया था कि मैं चौंक गया। अन्दर-ही-अन्दर मुझे भय हुआ। वह मुझसे बेफिक्र होकर प्यालियों में चाय ढालने लगी थी। नौकर ने एक बार उसे और एक बार मुझे देखा—फिर, कुछ समझ पाने में असमर्थ, चला गया। उसके जाते ही मैंने राहत की साँस ली। वह कुछ देर और वहाँ खड़ा रहता तो उसे यह भाँपने में मुश्किल नहीं होती कि मैं अपने अन्दर बेइज्जत हुआ हूँ।

चाय तैयार थी। तिपाई पर दो अनिर्णीत प्यालियाँ रखी हुई थीं। इन प्यालियों का क्या हो? वह यह फैसला नहीं कर पा रही थी कि वह मेरी प्याली मुझ तक पहुँचाये या इन्तजार करे। सभ्यता का तकाजा यह था कि मैं खुद उठ कर उस तक जाता और प्याली उसे थमाता। मगर मैंने अपनी जगह पर, इस समूचे घटनाक्रम में उदासीन, बैठे रहना ही पसन्द किया।

यह सारा झमेला स्वयं उसने मोल लिया। चाय अपनी ओर मँगाने

की कोई जरूरत नहीं थी। जो कुछ, अब उसे करना पड़ेगा, दूसरी हालत में, मैं करता।

कुछ क्षण इसी तरह गुजरे। फिर उसने कनखी से मुझे देखा। उसकी दृष्टि मे व्यग्य भी नही था और तिरस्कार भी नहीं—केवल मुझे तौलने की एक कोशिश थी। मैंने अपनी निगाह नही फेरी। उसी तरह अविचलित रहा। तब वह उठी। प्याली उसने मेरी ओर बढायी और कहा, 'इसे ले लीजिए।' फिर एक तश्तरी पर बिस्कुट रखती हुई बोली, 'यह भी ले लीजिए।' वह अपनी जगह से उठ केवल आधी दूर तक आयी थी—जैसे आधा सफर तय करने को, मेरे लिए छोड दिया हो।

मगर मुझे कोई सफर तय नही करना था। मैं अपनी यात्रा बहुत पहले ही पूरी कर चुका था। मैंने अपने पास की तिपाई इस तरह बढा दी कि मुझे उठना भी नही पडा और उसे चाय लिए खडा भी नही रहना पडा। तिपाई पर चाय रखते हुए उसने एक तेज नजर मुझ पर डाली और अपनी जगह पर बैठ बिस्कुट कुतरने लगी।

वह फिर पहले की तरह निश्चिन्त लगने लगी थी। चाय पीते हुए उसके चेहरे पर ताजगी वापस आने लगी थी। सर्दी के कारण उसने अपना पुलोवर और भी खीच लिया था। तब भी, लगता था, भीगने के कारण, वह सर्दी से पूरी तरह मुक्त नही हो पा रही थी। मैं उठा और पीछे पड़ा हीटर उसने जरा दूर पर रखने लगा।

'रहने दीजिए। इसकी जरूरत नही।' इसका मतलब था, जरूरत है!

'आप और चाय लेंगे?' उसने चाय की प्याली खाली करते हुए कहा।

उसके सवाल से मुझे याद आया, यह प्रश्न उसे मुझसे नही, मुझे उससे करना चाहिए था। घर मेरा है और सत्कार का कर्त्तव्य मेरा है। मगर बिंदो

शुरू से जिस ढग से पेश आ रही थी अगर वह कुछ देर और चलता रहा तो मुझे मान लेना पड़ेगा कि घर मेरा नही और मेजबान भी मैं नही हूँ, वह है।

इस कौशल से मैं परिचित नही था। यह, लगता है, उसने इन बीच के वर्षों मे सीखा था। यह नही कि पहले उसने इस घर मे अपना हुक्म नहीं चलाया—यह भी नही कि उसने मुझे कभी यह महसूस न कराया हो कि मुझे सलीका नही। बल्कि अक्सर ही उसकी यह कोशिश रही। वह मुझे हमेशा दाँव मे ले लेने के ताक मे रहती।

मगर उसे इस तरह अनधिकार चेष्टा करते, पहली बार देखा था। अब वह किस ज़मीन पर खड़ी होकर धौंस ले रही है? क्या वह जमीन अब भी पैरों के नीचे है? या वह मुझे यह अहसास कराना चाहती है कि जमीन उसके साथ वापस आ गयी है?

अगर मैं बिंदो को ठीक समझता न होता तो यह गुत्थी बनी रहती। मगर उसने मुझे बेवकूफ मान लिया था—मैं उसे कभी नादान नही मान सका। उसकी हर बात मे अर्थ होता है। अपनी बात को और भी ठोस ढंग से रखने के लिए वह बात से अधिक इशारों और भगिमाओं से काम लेती थी। औरतों में यह खास बात होती है कि अगर आपने उनका इशारा नही समझा तो वे आपके लिए मन में घृणा पोसने लगेंगी।

'आप चाय और लेंगे?' मुझे सोच मे पड़ा देख उसके ओठो पर मुस्कान खेलने लगी थी। 'नही।' मैंने अपने को कसते हुए कहा।

मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह अपनी प्याली मे चाय उँडेलने लगी थी। उसकी लम्बी गोरी अँगुलियो मे प्याली इस तरह सधी हुई थी कि लगता था उसमे कही कुछ ढीला नही हुआ है। वह इतने सबके बाद भी अपने को थामे हुए थी। चाय पीते हुए वह आनन्द मे थी। इसके पहले जो

तनाव उसमें रहा होगा, अगर रहा होगा तो, वह कहीं नहीं था। उसे देख-कर कतई नहीं लगता था कि वह बेचैनी में आयी है।

उसके प्रकृतिस्थ होने से मुझे जितना कौतूहल हो रहा था, उतनी ही ईर्ष्या। वह उसी नपे-तुले अन्दाज़ से चाय पी रही थी। इस बीच नौकर एक बार झांक गया था--शायद यह पूछने के लिए कि किसी चीज़ की जरूरत तो नहीं। या यह देखने के लिए कि क्या हो रहा है? जब वह दुबारा आया तो बिन्दो ने उससे कहा कि वह सामान हटा ले!

बिंदो के व्यवहार से मुझे जितनी हैरत हुई थी उससे अधिक नौकर को हुई होगी। उसने एक बार सशंक बिन्दो को देखा, फिर एक-एक चीज चुनने लगा। उसके जाते ही बिंदो फिर अपने पुलोवर को कभी ढीला करने और कभी कसने में व्यस्त हो गयी।

मैंने तय किया था कि मैं अपना मौन नहीं तोड़ूँगा। जिस तरह बरसों की चुप्पी मेरा दम घोटती रही है, उसी तरह उसे भी इस यातना से गुज़-रना होगा। मगर उसने, मेरी मौन प्रतिज्ञा को पढ़ लिया था। और शायद वह मेरी प्रतिज्ञा तुड़वाने ही आयी थी। बजाय इसके कि वह विजेता होकर यहाँ से जाए मुझे ही अपनी समरनीति बदल देनी चाहिए और एक दूसरे मोर्चे पर उससे मुठभेड़ करनी चाहिए।

'तुम चाहो तो कपड़े बदल लो—तुम भीग गयी हो।' मैंने कहा।

उसने मुँह बिदकाया।

'मेरे खयाल में बदल लेना चाहिए। जुकाम हो सकता है!' देखा जाए इस धमकी का क्या असर होता है।

'कपड़ों के लिए घर जाना होगा।' यह बात मुझे सूझी ही न थी। उसने इस तरह मुँह बनाया जैसे सवाल कर रही हो कि क्या तुम चाहते हो कि घर चली जाऊँ।

मैं इतनी जल्दी बाज़ी हारना नहीं चाहता था। अगर उसने मुझे इस मोर्चे पर भी मात दे दी तो ?

'तुम चाहो तो अन्दर जाकर सुखा सकती हो। मुश्किल से दस मिनट लगेंगे। मुझे डर है तुम्हें जुकाम हो सकता है।' मैंने दुहराया।

'अच्छा !' उसकी आँखों में चमक आयी। वह अपनी जगह से उठी। उठते-उठते उसने मुझे देखा और एक बार मेरे अन्दर तक झाँक गयी। शायद वह मेरा कपट समझ गयी थी।

जब वह अन्दर चली गयी तब मैंने अपने को उलझन में पाया। यह नहीं कि मेरे और उसके बीच शर्म थी। यह भी नहीं कि पहली बार उसने मेरी उपस्थिति में कपड़े बदले हों। दरअसल मुझे उम्मीद नहीं थी कि वह इस प्रस्ताव के लिए इतने जल्द तैयार हो जाएगी। मैं सोचता था वह ज़िद करेगी और मैं उसे उलझन में डालने में सफल होऊँगा।

अन्दर खटपट से मैं समझ गया वह सचमुच कपड़े बदल रही है। थोड़ी देर में वह शाल ओढ़े हुए निकली। 'साड़ी कुछ खास नहीं भीगी थी। पुलोवर और ब्लाउज़ मैंने हीटर के करीब सूखने को रख दिया है। यह शाल मिल गया !'

वह शाल अपने सीने और कंधों से लपेटे हुए थी। कसे हुए शाल में वक्ष की गोलाइयाँ ज्यादा उभर आयी थीं। मेरी निगाह उससे मिली तो मुझे लगा उसने मुझे चोरी करते पकड़ लिया हो। उसने विजेता की तरह मुझे देखा। एक बहुत महीन-सी मुस्कराहट उसके ओंठों पर तैर गयी।

वह इस बार मुझसे दूर न बैठ, नजदीक ही सोफे में धँस गयी। उसके पास आ जाने से मैंने असुविधा का अनुभव किया। मैं अब तक कुर्सी के हत्थे पर पैर रखकर आराम से बैठा हुआ था। उसके करीब आते ही मुझे लगा कि मुझे ठीक से बैठना चाहिए और ज्यों-ज्यों मैं कायदे में फँसता

गया वैसे-वैसे घुटन बढ़ती गयी।

बदन की आँच से कोई बच नहीं सकता। मगर यह बदन की आँच नहीं थी—अगर होती तब तो मामला आसान था। यह एक अनोखी घुटन थी—सारे घर मे धुआँ और बाहर निकलने का कोई रास्ता नही।

वह समझ गयी कि मैं असुविधा मे हूँ। उसके चेहरे से लगा, उसे इससे खुशी हुई। मैंने चिढ़कर उसे देखा।

पिछली शाम मैं उससे लड़ चुका था। बल्कि मैं उसे वह कुछ कह चुका था जो स्वय उसे खुद उसकी नजर मे गिराने के लिए काफी था। मगर बिंदो इन तमाम वर्षों मे और भी चालाक होकर आयी थी। वह कल की बातों को इस तरह भुलाये हुए थी जैसे किसी बच्चे के लड़कपन को कोई बड़ा क्षमा कर दे। मगर मैं न तो कल को भूल सकता न उसे क्षमा कर सकता था। यह मेरे स्वभाव मे ही नहीं।

मैंने कलाई मे बँधी अपनी घड़ी पर निगाह डाली—गोया मैं अफसर हूँ और वह एक साधारण मुलाकाती। मगर यह तरकीब उस पर कारगर नही हो सकती थी। वह बिल्कुल निश्चिन्त मुद्रा मे थी—कम-से-कम लगता यही था।

'तुम शायद कोई खास बात करने आयी हो।' आखिर यह मौन मुझे ही तोड़ना पड़ा। कहना तो मैं यह चाहता था, 'तुम यहाँ क्यो आयी हो ?' मगर अपने को दबा गया। उसने मेरी बात पर ध्यान नही दिया, जैसे सुना ही न हो। यह उसके टाल जाने का खास ढग था। जब भी वह सामना नही करना चाहती अपने मे व्यस्त होने का ढोंग कर जाती। दो-चार बार कोशिश करने पर वह घोंघे से बाहर निकल आती थी—मगर तब उसकी दृष्टि मे पराजय नहीं, दुत्कार होता। अगर मैं अपना सवाल दोह-राऊँ तो उसका नतीजा भी यही होगा। वह मुझे अनुभव करायेगी कि मैं

निर्मम हूँ।

मगर यही तो मैं चाहता हूँ—मैं चाहता हूँ कि वह अनुभव करे कि मैं निर्मम हो सकता हूँ। कई साल साथ रहने और कई बार कोशिश करने पर भी मैं यह साबित नहीं कर सका कि मैं सख्त हो सकता हूँ। अब जबकि मेरे और उसके बीच कुछ भी नहीं बचा है—यही मौका है। तो क्या कहूँ? 'तुम यहाँ क्यों आयी हो?' अगर मैं यह सवाल करूँ तो उस पर क्या असर होगा? क्या वह यह समझेगी कि यह मैं कौतूहलवश पूछ रहा हूँ या कि मैं अपने घर पर अपना अधिकार जता रहा हूँ?

एक जमाना था जब मैं सुनी और पढ़ी हुई बातों को व्यवहार और सम्बन्ध पर लागू करता था। अधिकार प्राप्त करने के लिए धौंस, प्रेम प्राप्त करने के लिए करुणा, प्रशंसा पाने के लिए शौर्य! मगर इनमें से कुछ भी पूरी तरह सच नहीं निकला। अलग-अलग स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों की दुनिया अलग-अलग होती हैं। सबमें कुछ समानताएँ होती हैं, जिनसे फ़ार्मूले बनते हैं। मगर ये फार्मूले कुछ ही दिनों चलते हैं—तभी तक, जब तक कि स्त्री-पुरुष एक-दूसरे को जानते नहीं? एक दूसरे को जानना, एक-दूसरे से अलग होना है या एक-दूसरे से जुड़ना—इसके बारे में क्या कहा जा सकता है; क्योंकि जो जिससे जितना जुड़ता है उतना ही टूटता है, जो जिससे जितना प्रेम करता है उतनी ही घृणा। प्रेम करना घृणा करना है और घृणा करना प्रेम करना है। व्याख्याएँ करते हुए दिमाग उलझने लगता है और इससे सबसे पहले जो चीज टूटती है; वह है आत्मविश्वास। आखिर में टूटा हुआ आत्मविश्वास ही रह जाता है।

मैं कैसे दावा कर सकता हूँ कि मैं बिंदो के साथ जो व्यवहार कर रहा हूँ उसके पीछे वे ही प्रेरणाएँ नहीं जो ऊपरी तौर पर कामयाबी की ओर मगर वास्तव में मुझे विफलताओं की ओर ले गयी थी।

'आप शायद कुछ कह रहे थे।' उसने मुझे इस संकट से उबार लिया। अब मैं चाहता तो कहता, 'तुम यहाँ क्यों आयी हो ?' मगर किसी चीज ने मुझे एक झटके के साथ रोक दिया। अपने अन्दर झटका खाकर मैं अपनी जगह पर हिला और उसकी ओर मुडा। वह मुझे टकटकी लगाये देख रही थी। शायद वह प्रतीक्षा कर रही थी। उसकी कलाई में घड़ी नही थी। दोनों ही कलाइयाँ चूड़ियों से भरी हुई थी। अक्सर उसकी कलाई नगी होती थी—केवल प्लास्टिक का एक छल्ला होता था। इस सिंगार पर मैंने पहले गौर नही किया था।

'शायद तुम कोई खास बात करना चाहती हो।'

'हाँ, मैं करना चाहती हूँ।' उसने इतनी दृढता से कहा कि मुझे लगा मैं अपनी जगह पर लुढक गया हूँ। मैं नही सोचता था कि वह इस तरह पाँसा पलट देगी।

मैंने सम्हलते हुए कहा, 'कहो।'

मेरी ओर से छूट पा वह मुस्करायी और अपनी रग-बिरगी चूडियों से खेलने लगी। वह चूडियों के साथ मुझसे भी खेल रही थी। वह जानती थी कि मैं अपमानित हुआ हूँ। उसकी मुस्कराहट पहले से बढ गयी थी।

मुझे चिढा हुआ देख उसने अपना मुँह दूसरी तरफ कर लिया था। फिर अचानक वह मेरी ओर मुडी। 'मैं अपनी चिट्ठियाँ वापस लेने आयी हूँ!'

अलग होने के पहले भी उसने मुझसे अपनी चिट्ठियाँ माँगी थी, जिन्हें मैंने सहेज कर रख दिया था। उन चिट्ठियो से मुझे कोई मोह नहीं था। उनमे कोई खास बात नही थी। समय-समय पर उसने यहाँ-वहाँ से मुझे लिखा था। उसके खतों को बाद मे पढने पर, मैंने पाया था कि उनमें प्रेम नही था, चालाकी थी। हर बात सम्हाल-सम्हाल कर लिखी गयी

थी। वह कुछ भी साफ-साफ नही कहना चाहती थी। उसके जाने के बाद मुझे स्वय हैरानी हुई थी कि मैं इन चिट्ठियों को इतने दिनों तक प्रेम-पत्र कैसे समझता रहा। मैं उन्हें तभी वापस कर देता मगर वह, न अपना पता छोड गयी थी, न ठिकाना।

'तुम मुझसे लडने आयी हो ?' मैंने कहा।

'मैं अपनी चिट्ठियाँ वापस लेने आयी हूँ।' उसने जरा भी उद्विग्न हुए बिना उत्तर दिया।

'मेरे पास तुम्हारी कोई चिट्ठी नही।' मैं उत्तेजित हुआ।

'झगडा मैं करना चाहती हूँ या तुम ?'

'तुम जो भी समझो।'

'मैं अपनी चिट्ठियाँ लेकर जाऊँगी !'

'क्या है तुम्हारी चिट्ठियों मे—हीरा-मोती-जवाहरात !'

'तो वापस कर दो !'

'वापस न करूँ तो क्या करोगी ?'

'तुम्हारे सोचने की बात है !'

इस बीच वह सोफे से उठकर पडी कुर्सी पर जा बैठी थी और अपना जूडा ठीक करने लगी थी। शाल उसके कंधे से गिर गया था और छातियाँ लगभग नंगी हो गयी थी। अचानक मेरे मन मे वर्बरता उत्पन्न हुई। इच्छा हुई उसे उठाकर सोफे पर पटक दूँ। और मसल दूँ। उसके साथ बलात्कार करने के आवेग को दबाते हुए मैंने कहा, 'तुम अपने को क्या समझती हो ?'

उसने मुझे फिर अनसुना किया। 'मेरे कपड़े सूख गये होंगे !' कहती हुई वह उठी और अन्दर चली गयी। जरा देर मे वापस आने पर उसका शरीर अधिक सँवरा हुआ था। शाल उसने भीतर छोड ब्लाउज पहन लिया था, मगर ऊपर के दोनो बटन इस तरह खुले थे कि छातियाँ अब भी

नगी लगती थी। पता नही उसने जान बूझकर किया था या यह केवल लापरवाही थी। मुझे लगा वह बाजारू औरतो की तरह हरकत कर रही है।

'मेरे पास तुम्हारी चिट्ठियां ही नही,' मैने कहा 'और भी बहुत कुछ है।' मैने तय कर लिया था कि मै उसे पूरी तरह गिराकर चैन लूंगा। यह साबित करके रहूँगा कि वह एक बाजारू औरत है।

'मुझे केवल चिट्ठियो से मतलब है और किसी चीज से नही!'

'चिट्ठियां अब तुम्हारी सम्पत्ति नही—उन पर मेरा अधिकार है।'

'मेरी किसी भी चीज़ पर तुम्हारा अधिकार नही।'

'चिट्ठियां मुझसे ही वापस लोगी या औरो से भी।'

'और किससे ?' वह तमतमायी। वार निशाने पर लगा था।

'मुझे बदनाम करना चाहते हो!' मैने कमज़ोर जगह को कुरेद दिया था। 'तुम्हें यही शोभा देता है।' उसने वितृष्णा से मुझे देखा।

उसके पिटने पर मुझे खुशी हुई और हौसला बढा।

'इसमे बदनामी की क्या बात है! तुमने अपना रास्ता पकड लिया है, मैने अपना!'

'कौन-सा रास्ता पकड लिया है, मैने ?' वह क्रोध मे आ गयी थी।

मेरी ज़बान पर आया, 'जहन्नुम का!'

'बोलते क्यो नही!' वह गुस्से मे थरथरा रही थी। पहले के दिनो में मै उसके गुस्से से सिहर उठता—शायद उससे माफी मांगने लगता। मगर ये पहले के दिन नही थे, बल्कि उनका बदला था।

'बोलते क्यो नही, बोलो!' वह क़रीब-क़रीब चीखने लगी थी।

स्त्री अन्ततः बेवकूफ होती है। यह स्वयं अपना कोई कोना किसी को छूने नही देगी, मगर दूसरो पर अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानकर चलेगी।

आवेश मे बिंदो अपनी जगह पर उठ खड़ी हुई थी। वह रण को चुकी थी।

'इस तरह चीखने-चिल्लाने की जरूरत नही !' मैने बैठे-ही-बैठे कहा। 'मै नही चाहता कि शोर हो।'

'तो तुम चाहते क्या हो ?' उसने सोफे पर बैठते हुए कहा 'मुझे तबाह करना चाहते हो ?'

'मैने न किसी को तबाह किया है, न करना चाहता हूँ।'

'फिर मुझ पर झूठा इल्जाम क्यों लगाया ?'

'मैने क्या इल्जाम लगाया ?'

'तुमने कब मुझे किसी के साथ देखा ?'

'तुम क्या कहना चाहती हो—सती-सावित्री हो ?'

'हाँ—हूँ !'

'नही हो।' मै आखिर तक तर्क करने का हौसला रखता था। मैने फैसला कर लिया था कि इस बार मै उसे परास्त करके रहूँगा। बिन्दो जैसी जिद्दी औरत से निपटना मुश्किल था; मगर मुझे किसी और से नही उसी से निपटना था। अपने गुस्से मे वह कुछ भी कर सकती थी—मगर मुझे इससे कोई मतलब नही। उसे जो कुछ भी करना हो करे। मै उसकी धमकियो मे नही आऊँगा।

'मैने किस-किस को दिया है !' उसका स्वर दुबारा चढ़ने लगा था। उसकी आँखो में तीव्र घृणा थी और नथुने फुफकार रहे थे।

मुझे अचानक हँसी आ गयी। मेरे हँस पड़ते ही वह बाज की तरह टूट पड़ी—जैसे अवसर की प्रतीक्षा ही कर रही थी।

'मेरे साथ मेल रहे हो।' तुम्हें शर्म आनी चाहिए—एक स्त्री की इज्जत को लेकर इस तरह खिलवाड़ करते। मैं वेश्या हूँ ? मुझे नही पता

था तुम यहाँ तक गिर सकते हो !'

उसकी आवाज भर्रा आयी थी और आँखें अब-तब थी। मैंने नही सोचा था कि मैंने जो शुरुआत की थी उसकी परिणति यह होगी। मैं उसे नाराज करना चाहता था, रुलाना नहीं। जब वह, सचमुच रोती, मुझे घबराहट होती थी। मेरी समझ मे नहीं आता था, क्या करूँ ? घबराकर मैं उसे मनाने लगता था, उससे तावडतोड माफी माँगने लगता था। जैसे-जैसे मेरी याचना बढती जाती वैसे-वैसे उसके आँसुओ का प्रवाह बढता जाता। फिर एक जगह जाकर यह दृश्य थमता और वह आँसुओ में से निखर कर बाहर आती। यह चरम स्थिति थी जो जरूर होती। मैं नही चाहता था कि यह भूला हुआ दृश्य फिर नजर आये। अगर मैंने एक बार भी माफी माँग ली तो सबका सब घहराकर गिर पडेगा।

दूसरे मैंने विन्दो को अनजाने मे दुःख नही पहुँचाया था—दुःख तो मैं पहुँचाना चाहता ही था। मुझे उसके नतीजो के लिए तैयार रहना चाहिए था। बल्कि मुझे तो पहले ही सोच लेना चाहिए था कि इसका नतीजा यह होगा और ऐसी हालत मे मैं यह करूँगा।

चुप रहकर मैंने उसे भी चुप होने का मौका दे दिया था। वह रो तो नही रही ! मैंने देखा और जब यह विश्वास हो गया कि उसने सम्हाल लिया है तब आहिस्ता से जेब से निकाल मैंने सिगरेट सुलगायी जैसे इस सारे तनाव का अन्त यही होना था।

मगर तनाव समाप्त नही हुआ था। अगर हो चुका होता तो वह चली जाती। उसने अपने को पहले की तरह कर लिया था और क्रमशः वापस आने लगी थी। मैंने सोचा भी यही दाँव अपनाना चाहिए। वह जिस भाषा मैं पसन्द करे उसी भाषा में बात करनी चाहिए—यह जरूर है कि इसके पहले कि वह धावा मारे, मुझे हमला कर देना चाहिए। अच्छा यह

यह होगा कि नौकर इस वक़्त बाहर चला जाय। उसके रहने से बिन्दो को कोई रुकावट न हो, मुझे है। मगर मैं उसे साफ़-साफ़ नहीं कह सकता था। इससे बिन्दो भी सतर्क हो जाती और वह भी सूँघने लगता।

मैंने भीतर जाकर उससे पूछा, 'शाम के लिए क्या बन रहा है?'

'क्या बनेगा?'

'क्या है?'

'बैंगन है, आलू और गोभी।'

'और कुछ नहीं।'

'कुछ मिला नहीं।'

'जाकर ले आओ।'

'क्या लाऊँ?'

'कुछ सब्ज़ी ले आना, फल और मछली!'

'मछली' पर मैंने ज़ोर दिया। मैं जानता था और चीज़ें यहीं नज़दीक मिल जायेंगी, मछली के लिए उसे दूर जाना होगा। कुछ वक़्त तो निकल ही जायेगा।

नौकर के बाहर जाते ही बिंदो ने मुझे शंका से देखा। उसे शायद लगा होगा कि कुछ गड़बड़ है। मगर उसमें भय नहीं था। शायद वह भी चाहती ही थी कि और कोई न रहे।

एकान्त होते ही एक सकोच सा पैदा हो गया। शाम घिर आयी थी, एकदम घुटी-घुटी-सी। गली में खेल रहे लड़कों के शोर के बावजूद मनहूसी टूटती नहीं बढ़ती लगती थी।

कायदे से बिंदो को अब तक पता जाना चाहिए था। नये सिरे से मैं और वह दो अजनबी थे। पराये आदमी का इतना लम्बा साथ ऊब और थकान ही पैदा करता है। मगर क्या सचमुच ही वह अजनबी है? या वह

केवल मेरी इच्छा है कि वह अजनबी हो जाय ?

उसके मुख पर प्रश्न था—जैसे वह जानना चाहती हो कि आखिर मेरी इच्छा क्या है ?

'मुझे अपनी चिट्ठियाँ चाहिए।' उसने धीमे से मगर शक्ति के साथ कहा। शायद अन्दर से वह अपनी गलती महसूस कर रही थी—उसे चीखना नहीं चाहिए था। वह उन स्त्रियों में से थी जो अपनी कमजोरी जाहिर नहीं करती, दूसरों को फूट पड़ने का बढ़ावा देती है।

'मैं उसकी चिट्ठियाँ रखना तो चाहता था नहीं। मेरे लिए वे घर के किसी कोने में बने हुए जाले-से, जिसे साफ करने की कभी इच्छा ही न हुई हो, अधिक कुछ नहीं थी। मगर मैं उसकी जिद के आगे घुटने नहीं टेक सकता था।

'चिट्ठियाँ मैंने तुम्हें तभी लौटा दी होतीं। मगर···' मैंने उत्तर दिया।

'मगर क्या ?'

'मगर तुमने,' मैंने उसकी उत्सुकता को ताड़ते हुए कहा, 'मेरे साथ जो सलूक किया !'

'क्या सलूक किया।' उसके स्वर में दृढ़ता और साथ-ही-साथ छिपी हुई खुशी भी थी।

'तुमने मेरी बदनामी की !'

'क्या बदनामी की !'

'मेरे बारे में हर तरह की बात की।'

'क्या बात की ? साफ़-साफ़ कहते क्यों नहीं ?'

'तुम जानती हो !'

'मैं कुछ नहीं जानती।'

उसका झुँझलाया हुआ स्वर सुनकर मुझे भय हुआ कि शायद वह

फिर झगड पडेगी। कलह से मै डरता नही हूँ। इसके विपरीत मैं चाहता ही था कि कलह हो। मगर वह मुझ पर हावी हो जाय, यह नही होगा!

'जब यह तय हो चुका था कि अब नही चलेगा, तब तुमने औरो से जाकर अपने और मेरे बीच की वे सब बाते क्यो कही?'

'मुझे यह तो उम्मीद नही थी कि मैं विंदो को यह महसूस करा दूँगा कि वह अपराधी है—इस इरादे से मैंने यह कहा भी नहीं था—मगर, मैं यह जरूर सोचता था कि उसके चेहरे से एक पर्दा, क्षण-भर को ही सही, हट जायगा। पुरानी स्मृति कही न कही कारगर होगी! मगर ऐसा कुछ भी नही हुआ। वह सख्त पत्थर की तरह बैठी रही।

पुरानी बातों पर नयी रोशनी पडती है और या तो रोशनी गलत होती है या पुरानी बाते! सम्बन्ध-विच्छेद के बाद, जब भी, तटस्थ होते हुए मैंने विन्दो के बारे मे सोचा, इसी नतीजे पर पहुँचा कि वह एक न्यूरोटिक स्त्री है। इस नतीजे पर पहुँच कर मुझे अनुपम तृप्ति मिलती थी। अचानक एक दिन मुझे स्मरण आया कि उसने कहा था कि 'तुम्हारे साथ कुछ दिन और रही तो पागल हो जाऊँगी।' यह बात याद आने ही मुझे भयानक बेचैनी हुई। यह सवाल मुझे देर तक परेशान करता रहा कि क्या उसको 'न्यूरोसिस' में था और क्या मुझसे अलग होकर अब वह स्वस्थ है!

सर्दी बढ जाने से मैंने दूसरा हीटर भी जला दिया था, नजदीक होने के कारण जिसकी आँच पैरों और पिंडलियों में लगने लगी थी।

'मुझे जरूरत नहीं।' वह तुनकी। उसने सोचा होगा मैं खुशामद कर रहा हूँ। मगर वास्तव मे मै अन्तराल दे रहा था।

'तुमने बताया नहीं।' मैंने दुहराया।

उसने अपना मुँह फेर लिया था। वह मेरा सामना नही करना चाहती थी। यह सुविधा की स्थिति थी। वह अपना स्पष्टीकरण भी दे सकती थी

और मेरे प्रति जवाबदेह होने से इन्कार भी कर सकती थी। यह अनुभवी और होशियार लड़कियों की खास अदा होती है—शुरू में जिसे न समझ पाने पर आदमी फँसता है।

'क्या तुमने अनिल से जाकर रोना नहीं रोया था।' उसकी दृढ़ता से मैं विचलित होने लगा था।

'रोया था।' उसने 'अगर कहा भी तो क्या कर लोगे' एक ही मुद्रा में कहा।

'तुमने यह क्यों कहा कि मैंने तुम्हारा इस्तेमाल किया?' जवाब न पा मैंने अपना सवाल आगे बढ़ाया, 'क्या इस्तेमाल किया था मैंने तुम्हारा?"

उसने भृकुटि टेढ़ी की, गोया सवाल करना चाहती हो, क्या मुझसे लड़ना चाहते हो? लड़ना मैं उससे नहीं चाहता था, मगर हथियार डालना भी उचित नहीं था। बिन्दो-जैसी युद्ध-कला में निपुण स्त्री के आगे ढीला पड़ने के नतीजे क्या हो सकते है, मुझे अच्छी तरह पता है।

'वह कौन होता है?' इस बार उसने तीखे स्वर में कहा।

'वह कौन?'

'अनिल।'

'यह तुम जानो!'

'फिर तुम बार-बार उसका हवाला क्यों दे रहे हो?'

'तुमने उससे जाकर सब बातें कही!'

'कही थी। उस वक्त जरूरी था।'

'क्यों जरूरी था?' मैंने चीखते हुए कहा।

'शायद मेरे और तुम्हारे बीच गलतफहमी रह जाती।'

उसका गम्भीर चेहरा देखकर क्षण-भर को संशय हुआ। क्या यह सच-मुच चाहती थी कि कोई भ्रान्ति न रह जाय? मगर गलतफहमी के लिए

बचा ही क्या था ! जितना उसे मैं जान चुका था, उससे अधिक वह मुझे जान गयी थी। उसे विवाह के बिना वे सब सुविधाएँ प्राप्त थी जिनसे स्त्री पुरुष को तौलती है और मुझे वे सब अवसर थे जिनसेपुरुष स्त्री को परखता है।

कमरे मे अँधेरा हो चला था। मैंने उठकर बत्ती जलायी। देखा वह अपना पर्स खोलकर कुछ तलाश कर रही थी।

'नौकर नही आया ?' उसने पूछा।

'नही।'

'मुझे पानी चाहिए।' उसकी हथेली मे एनासिन की दो टिकियाँ थी।

पानी माँगने के उसके लहजे पर हैरानी हुई। अभी थोड़ी देर पहले जो लडकी अधिकार के साथ चाय बना रही थी, अब वही इतनी अजनबी हो गयी कि उसे भीतर जाकर स्वय पानी लेने मे सकोच हो रहा है।

'इसके साथ चाय ठीक रहेगी।' मैंने कहा।

'नही, चाय की ज़रूरत नही।'

'पानी के साथ असर नही करेगी।' मुझे भूख तो लग ही आयी थी—चाय के बिना भी बेचैनी हो रही थी।

उसने आपत्ति नही की। मैंने किचन में जाकर केतली पर पानी रख दिया। भीतर भी अँधेरा था। बत्तियाँ जलाकर मैंने बाँथरूम मे हाथ-मुँह धोया। जैसे ही आईने के सामने हुआ, चौक पड़ा। मेरे सामने कोई और आकृति खड़ी हुई थी। मेरा चेहरा काला पड़ गया था। यह मैं नही, 'कोई और मैं' था। यह कई साल पहले की, ठीक उस दिन की आकृति थी; जब मै बिन्दो से लड़कर अलग हुआ था। उस दिन भी यही तनाव था, यही रस्म—अदायगी थी और यही बेचैनी थी। मेरा चेहरा मार खाया हुआ था—मैं सब-कुछ हार चुका था। आज अचानक चेहरे पर का मोम पिघल

गया और असली सूरत उभर आयी। घबरा कर मैंने बत्ती बन्द कर दी और तेजी से बाहर आया।

नौकर सामान लेकर आ गया था। चाय वह पहले की तरह बिंदो के सामने रख रहा था। उसे देखते ही मुझे चिढ़ हुई। बेवकूफ! गधा! मैंने मन-ही-मन उसे गालियाँ दीं।

बिंदो ने चाय प्याली में डाली। मगर इस बार प्याली बढ़ाकर मुझे नहीं दी। वह दो टिकियाँ मुँह में डाल चाय पीने लगी थी। बिस्कुट मैंने उसकी ओर बढ़ाया तो उसने मना कर दिया।

'खाना कितने जनों का बनाना है?' नौकर ने दुबारा कमरे में घुसकर निहायत भौंडा सवाल किया।

'बदतमीज़! पता नहीं इसे कब अक्ल आएगी!' मुझे कहना चाहिए था। मगर मेरी इच्छा हुई कहूँ, 'शाबाश!' बिंदो इससे ज़रूर अपमानित हुई होगी। उसके अपमानित होने का खयाल मुझे बल देता है। दिखावे के लिए मैंने नौकर को डाँट कर कहना चाहा, 'तुम जाओ, अपना काम करो।' मगर इसके पहले कि मैं यह कहूँ, बिंदो ने बिजली की तरह एक झपकी से मुझे देखा और फिर तुरन्त नौकर की ओर मुखातिब होती हुई उसे आदेश दिया, 'खाली साहब का बनेगा!'

बिंदो के अभिजात स्वर की कठोरता से सहम नौकर चला गया। बिंदो परिस्थिति को बनाना और बिगाड़ना दोनों ही जानती थी। उसे स्वयं को अपमान से बचना आता ही था, वह मुझे भी औरों के अपमान से बचा लेती थी। मेरा उसने जितना भी तिरस्कार किया—कोई और मेरा अपमान कर जाय, यह वह नहीं देख सकती थी। अपना यह अभिजात वह अब भी बचाये हुए थी। लेकिन मुझमें यह संस्कार नहीं था। जब भी मैंने उसे अपमान से बचाया तो प्रेम के कारण, जब अपमानित किया तो घृणा के कारण। अब

उसका अपमान हो तो मुझे क्लेश नही होगा । उसे इसका अन्दाज है और इसीलिए वह स्वय अपने को बचा गयी ।

चाय पीकर, लगता है, वह कुछ स्वस्थ अनुभव कर रही थी । अपने छोटे-से रूमाल से अपना मुँह पोछते हुए उसने पूछा, 'वक़्त क्या हुआ होगा ?'

'छह ।'

'मुझे चलना चाहिए ।' उसने 'मैं जाऊँगी' नही कहा, जो तुनकने पर वह कहती थी ।

मेरी चाय समाप्त नहीं हुई थी । वह उसे इस तरह देख रही थी, जैसे इन्तज़ार कर रही हो कि कब चाय खत्म हो और कब वह उठे । मुझे जान-बूझकर देर करता देख *उसका चेहरा कुछ सिकुड़ा, आँखें छोटी हुईं—मगर* दूसरे ही क्षण उसने अपने को प्रकृत कर लिया ।

'मेरी चीज़े मुझे दे दीजिए !'

मैं उठा । वॉरड्रोब मे एक रूमाल मे उसकी चिट्ठियाँ सहेजकर रखी हुई थी । दो-एक बार कपडो के साथ उन्हे निकाला था । उनमे एक सजीव पुरानापन समा गया था । लिखावट फीकी पड़ गयी थी और कागज़ क़रीब-करीब पीला पड चुका था । हाल मे उन्हे पढने या निकालने की कोई तबियत नही हुई थी । बल्कि उनका खयाल ही कभी-कभी आता था । रूमाल मे लिपटी हुई चिट्ठियाँ निकालते हुए भय हुआ—कही मैं गलती तो नहीं कर रहा । बिंदो को वापस करने के बाद मैं बिल्कुल निहत्था हो जाऊँगा । अब तक मेरे पास एक [illegible] था, जिससे मैं [illegible] कुछ समय तक निपट सकता था । चि[illegible] क्या हो[illegible] [illegible]दो का सामना कर सकूँगा ? मेर[illegible] ये चि[illegible] बिंदो की असली [illegible] वार[illegible]

साफ़-साफ कह दूं, मैं खत वापस नहीं कर सकता—तुम्हें जो कुछ करना हो कर लो। अगर मैं वापस न करूँ तो वह कर भी क्या सकती है—चीख-पुकार के सिवा।

जब मैं वॉरड्रोब से वह गुलाबी रूमाल निकाल रहा था, बिंदो मुझे संदेह से देख रही थी। जब मैंने चिट्ठियाँ निकाल कर वॉरड्रोब बन्द कर दिया तब वह कुछ आश्वस्त हुई।

चिट्ठियाँ लेकर मैं अपनी जगह पर बैठ गया। रूमाल मेरे हाथ मे था। जिस चीज मे यह सब सहेजा हुआ था, उसका भी रंग उड चुका है। कितने बरस हुए! रूमाल मे एक सीली हुई गंध थी। यह रूमाल भी उसका था। 'यह भी तुम्हारा ही है,' तबीयत हुई जोर से कहूँ।

वह गौर से देख रही थी कि मैं किस तरह चिट्ठियाँ निकालता हूँ, किस तरह रूमाल ढीला करता हूँ और किस तरह उन्हें अपनी गोद मे रख लेता हूँ। जब इसी तरह कुछ वक्त गुजर गया, तब उसने प्रश्नभरी दृष्टि से मुझे देखा। क्या मुझसे सौदा करना चाहते हो? और वह कुछ और तन गयी। मैं सौदे के लिए तैयार हूँ।

मगर मैं सौदे के लिए तैयार नही हूँ। मैंने कभी अपने सम्बन्धो का सौदा नही किया। मेरे लिए सम्बन्ध हमेशा सम्बन्ध रहे। उनकी और कोई परिणति नहीं हो सकती। बिंदो अपनी चिट्ठियाँ ले जा सकती है। वह मुक्त है। मैं अंकुश नहीं बनना चाहता। उसका आरोप ही यह था कि मै उसे घेरे हुए हूँ। और वह घेरे को तोडकर चली गयी थी। अब जब घेरा नही रहा, तब मैं चाहूँ भी तो अंकुश नहीं बन सकता। मगर ऐसे नहीं होगा! यह अपनी पराजय है, एक बार फिर उसकी शर्तों को मजूर करना है। ये चिट्ठियाँ मेरी हैं। इन पर मेरा हक है। उसे वापस लेने का कोई अधिकार नही। उसने मुझसे माँगी, तकरार की और मैंने समर्पण कर दिया—मै फिर उसके

जाल मे फँस गया।

मैं अनजाने ही रूमाल कसने लगा। वह सहमी। उसने दुविधा मे भर-कर मुझे देखा।

'मुझे देर हो रही है।' उसने दबते हुए कहा।

"मैं तुमसे कुछ बातें कर लेना चाहता हूँ।'

अचानक उसका चेहरा विकृत हुआ और सारा व्यक्तित्व विकराल लगने लगा। गुस्से में उसके नथुने फड़कने लगे थे। वह उठ खड़ी हुई थी। उसके एक हाथ मे पर्स था और दूसरे में रूमाल।

उसका यह स्वरूप देखकर मैं अचानक पस्त हो गया। मेरी पकड़ ढीली हुई और रूमाल की सीली हुई गंध और भी व्याप्त हो गयी। अगर मैं अक्ल से काम नहीं लेता हूँ तो भयानक दुर्घटना होगी। सचमुच बुरा होगा।

मैं उठकर एक पैकेट ढूँढने का स्वाँग करने लगा।

'दो मिनट।' मैने कहा, 'सहेजकर देता हूँ।'

'सहेजने की कोई जरूरत नही। यह रूमाल भी तो मेरा है।' उसने रूमाल की ओर इशारा करते हुए व्यंग्य किया।

मैंने चिट्ठियाँ रूमाल मे ही अच्छी तरह लपेट दी थी। उसने नौकर को आवाज दी। उसे उसने आदेश दिया, वह टैक्सी ले आये और नज़दीक कही टैक्सी न मिले तो स्कूटर ले आये। उसकी सख्ती से नौकर डरने लगा था। सहमता हुआ वह बाहर चला गया था। वह बैठ गयी थी।

चिट्ठियाँ फिर मेरी गोद मे पड़ी हुई थी। समझ मे नही आता था उसे किस तरह दूँ—क्या उसके सामने रख दूँ या उठ कर हाथ मे दूँ या केवल बढ़ा दूँ। मेरे उसके बीच आदान-प्रदान का रिश्ता खतम हो चुका था—केवल दूरी रह गयी थी जो नज़दीक होने पर भी महसूस होती थी। आख़िरकार रूमाल उसकी ओर बढ़ाते हुए मैंने कहा, 'गिन लो, सौ से ऊपर हैं।'

मैंने सोचा था वह तुरन्त ले लेगी। मगर वह उस ओर से उदासीन बैठी हुई थी।

उसे सुनाते हुए दुबारा मैंने कहा, 'गिन लो।'

अब उसका हाथ बढ़ा और चिट्ठियाँ उसने ले ली। पर्स मे उन्हे रखते हुए उसने मेरी ओर देखा। उसकी आँखों मे पीड़ा थी। चिट्ठियाँ उसे देते हुए मेरी अंगुलियाँ काँपी।

जब तक आखिरी चीज अपने पास रहती है उम्मीद होती है। यह उम्मीद झूठी होती है। मगर आदमी इस झूठी उम्मीद को बनाये रखना चाहता है। वह इसी सम्भावना मे जीना चाहता है कि एक-न-एक दिन जरूर होगा।

मैं जिस यंत्रणा से कभी मुक्त नही हो सका था, वह प्रतीक्षा की यंत्रणा थी। मगर क्या मुझे इसी दिन की प्रतीक्षा थी? क्या यह आखिरी सूत्र भी तोड़ना था। बिंदो से अलग हुए कई साल हो चुके थे। मगर ऐसा लगता नही था कि मैं पूरी तरह अलग हुआ हूँ। आज ये चिट्ठियाँ उसे देने के बाद लग रहा था कि अब कुछ भी नही रहा। बिंदो क्षण-भर मे, मेरे लिए, पूरी तरह अजनबी हो चुकी थी।

अब उसकी उपस्थिति से मुझे घबराहट हो रही थी। मैं और वह आमने-सामने बैठे थे। मगर मैं उससे आँखें नहीं मिला पा रहा था।

मैं आज तक अपने को झुठला रहा था। आखिर मैंने चिट्ठियाँ सहेज-कर क्यों रखी थी। क्या इसलिए कि मुझे उनसे मोह था? इसलिए कि उनके प्रति मेरा कर्तव्य था? या इस कारण कि मुझे उम्मीद थी एक-न-एक दिन वह इन्ही चिट्ठियो के बहाने आएगी और मेरे और उसके बीच जो पुल टूट चुका है, वह फिर से बनेगा—वह बातचीत दोबारा शुरू होगी जिसका एकमात्र सूत्र ये खत हैं।

अगर यह सही है तो फिर बिंदो ने खत वापस लेने पर जोर क्यों दिया ! गलती उसी की है। अगर वह चाहती तो इस मामले को रफा-दफ़ा कर सकती थी। अगर वह जिद में न आती तो मामला यहाँ तक न पहुंचता।

मुझे पछतावा हो रहा था। मगर मैं यह स्वीकार नहीं कर पा रहा था कि इसमें दोष बिंदो का नहीं। बिंदो की जिद उसे दोबारा ले डूबी थी। पहले भी यही हुआ था। उस समय भी मैंने टालना चाहा था। मगर बिंदो के एकतरफ़ा दिमाग ने सब-कुछ को खत्म कर दिया।

मगर यह भी तो हो सकता है कि इस बार मेरा दिमाग़ एकतरफा हो। यह हो सकता है कि बिंदो सचमुच अपने खत वापस चाहती हो। वैसी हालत में वह कैसे दोषी है। जब उसके मन में मेरे लिए कुछ भी नहीं तब वह क्यों अपना कोई भी चिह्न मेरे पास रहने दे ?

ठण्ड बहुत हो जाने से उसने साड़ी का पल्लू गले में लपेट लिया था और हीटर पर हाथ सेकने लगी थी। इतनी मनहूस शाम कभी नहीं आयी थी। चारों तरफ बिल्कुल सन्नाटा था, जो काट रहा था। लगता था मैं किसी आदिम गुफा में आ गया हूँ—आस-पास मनुष्य-जीवन का कहीं चिह्न भी नहीं।

अचानक फोन की घंटी बजी तो यह मौन और भी चुभ गया। किसी ने गलत नम्बर लगाया था। मैंने अपनी कुर्सी कुछ और दूर खींच ली थी। अचानक मेरे मन में खयाल आया, कहीं कोई बिंदो से तो बात नहीं करना चाहता। हो सकता है बिंदो ने यहाँ का नम्बर दिया हो और मेरे रिसीवर उठाते ही उसने रख दिया हो। मगर आवाज़ तो स्त्री की थी।

'आपको तो कहीं फोन नहीं करना है।' मैंने कहा।

एक तो इस अटपटे प्रश्न से, दूसरे बदले हुए सम्बोधन से कुढ़कर उसने

उत्तर दिया, 'नही करना है।'

'अगर करना हो तो कर लीजिए।' मैंने ज़ोर दिया।

'मैंने कहा न, मुझे कहीं फोन नही करना है।' वह सारा वाकया समझ गयी थी। फ़ोन की घंटी से मेरे इस प्रश्न का क्या सम्बन्ध है, यह उसने फौरन ताड़ लिया था। 'मेरे लिए कम से कम आपके पास कोई फ़ोन नही आएगा।' उसने इस तरह कहा जैसे मैं उसका 'शत्रु-शिविर' हूँ और शत्रु-शिविर को कोई उसका भेद नही देगा।

'तो कहाँ आयेगा।' मेरी ज़बान पर आते-आते रह गया। मुझे फिर झुँझलाहट होने लगी थी, जैसे सारे बदन में चीटियाँ काट रही हों। 'तुम मुझे इस तरह अपमानित कर नही जा सकती। बदचलन! फाहशा!' मन मे उसके लिए गालियाँ निकलने लगी।

'तुम्हे तो यहाँ से रीगल जाना होगा।' मैने 'रीगल' पर ऐसे ज़ोर दिया जैसे कोई 'चकले' पर जोर देता है।

वह हँस पड़ी। वह शायद यह जताना चाहती थी कि मुझे लड़ना भी नही आता। मगर यह रहस्य क्या आज खुला है? बरसो साथ रहने के बाद भी क्या उसे पहले यह पता नही चला था?

दूसरे की हँसी अपने क्रोध को ठण्डा नही करती, बल्कि उपहास बन कर उसे हवा देती है। बिंदो की हंसी से क्षण-भर को तो मुझे लगा कि मैं गँवई हूँ; मगर दूसरे ही क्षण मेरा अभिमान जाग उठा और क्रोध दुगना हो गया।

मैंने बहुत प्रयत्न किया है कि मै उससे घृणा न करूँ। मगर हर बार मैं ऊपर उठकर नीचे गिर जाता हूँ। बहुत समझा-बुझाकर अपने मन को तसल्ली देकर, शान्त होता हूँ। मगर कुछ न कुछ ऐसा हो जाता है जिससे मन उद्विग्न हो जाता है और घृणा और आवेश की दुनिया वापस आने

लगती है। मैंने तय किया था कि मैं शांत रहूँगा—विंदो को सबक सिखाऊँगा। मगर इसके विपरीत वह मुझे छोटा कर जा रही है। अजीब बात है कि मैं हर बार यह संकल्प करता हूँ कि विंदो से बदला लेकर मैं अपना अधूरापन खत्म कर दूँगा—मगर हर बार यह अधूरापन कुछ और बढ़ जाता है।

अपनी असफलता पर दुःख और निराशा को छोड़ कुछ हाथ नहीं लगता—या फिर झीखना! तो क्या मैं सारा जीवन कुढ़ता और झुँझलाता रहूँ! क्या मैं इस नरक से कभी छुटकारा नहीं पाऊँगा?

मैं कातर होने लगा था। विंदो के सामने कातर होना बुरा होगा। दूसरी स्त्रियाँ कातर पुरुष को पुचकारती है, विंदो रौंदती है। उसके भीतर की सारी प्रतिहिंसा जाग उठती है और उसकी आँखों में घृणा की लपटें सुलगने लगती हैं।

वह अब भी हँस रही थी। लगता था उसका जी हल्का हो गया है। पर्स से नेल-पालिस निकाल वह अपने नाखून रँगे जा रही थी। उसे अपने में रत देख मुझे ईर्ष्या हुई। वह सुखी है! वह प्रसन्न है! उसमें कोई द्वन्द्व नहीं!

नौकर ने भीतर आते हुए कहा, 'साहब, टैक्सी आ गयी है।'

बिन्दो के लिए उसका 'साहब' सम्बोधन यह बताता था कि उस पर बिन्दो का रौब पूरी तरह पड़ चुका है। जब विंदो ने उठने में कोई जल्दी नहीं की, तब उसने दोबारा कहा, 'टैक्सी ले आया हूँ।'

'मालूम है।' विंदो ने उसी निरपेक्षता से कहा। वह अब भी अपने नाखून रँग रही थी। क्या वह जानबूझ कर देर कर रही है या सचमुच ही अपना काम समाप्त कर उठना चाहती है? मैंने भाँपने की कोशिश की। नाखून रँगने में मशगूल गरदन झुकाये हुए उसने कहा, 'अनिल कैसे हैं?'

'मुझे नही मालूम।' उसके हर प्रश्न का उत्तर जरूरी नही। मगर मैं हर बार उसके जाल मे फँस जाता हूँ—घबराकर उसके सवाल का जवाब देने लगता हूँ।

'क्या करते है आजकल ?'

मैं चुप रहा। मैं समझ नही पा रहा था अचानक अनिल का प्रसंग उसने कैसे निकाल लिया ? क्या इसमें भी कोई धोखा है ? या वह यह बताना चाहती है कि आने के बाद से वह उससे नही मिली है। अगर मिली भी तो क्या फर्क पडता है।' वह चाहे जिससे मिले, चाहे जहाँ जाय, मुझे कोई फर्क नही पडता।

'ऊँ।' वह अपने आप मे डूबी हुई बुदबुदायी।

'मैंने कहा न, मुझे नही मालूम।'

'क्यो ? मिलते नही।'

'मिलता हूँ।'

'फिर ?'

'फिर क्या ?'

'क्या करते हैं, आजकल ?'

'नौकरी करता है। मगर मैंने उसका ठेका नही ले रखा है।'

वह मुस्करायी। वह उठी। मैं उसे विदा देने के लिए खडा नही हुआ। अब जो हो, मैं झूठी रस्मे नही अदा करूँगा। जिसके लिए मन में घृणा हो, उसका सम्मान करने से बडा ढोग कुछ नही हो सकता। दूसरे मैंने उसे न्यौता नही दिया था। वह अपनी मर्जी से, बल्कि मेरी इच्छा के विरुद्ध आयी थी और मुझसे लड़कर जा रही है। मेरे घर घुस उसने मुझ पर हमला किया था। इसकी सजा यही हो सकती है कि वह यहाँ से अपमानित होकर जाय।

कुर्सी के कंधे पर हाथ रख अफसराना अन्दाज में बैठे हुए, मैंने उसे 'तुम जा सकती हो' की मुद्रा में देखा। वह अब भी खड़ी हुई थी। अगर मेरा बस चलता तो मैं उसे निकाल देता। उसने मुझे देखा भी इस तरह जैसे मुझे टटोल रही हो कि, क्या तुम मुझे निकालना चाहते हो?' अचानक वह तड़पी, उसका शरीर कौंधा—तेजी से बाहर जाते हुए वह एक बार मुड़ी और तीखे स्वर में कहा, 'मैं चिट्ठियाँ वापस लेने नहीं आयी थी।'

बाहर निकलकर क्षण-भर को वह सीढ़ी पर रुकी—एक बार इच्छा हुई कि उठूं और बाहर जाऊँ। मगर जैसे शरीर में शक्ति नहीं रह गयी थी। जिस जगह मैं बैठा हुआ था, उसने मुझे जकड़ लिया था।

मैं उसके चप्पलों की आवाज सुनता रहा। तीन तल्ले उतरकर नीचे पहुँचते-पहुँचते यह आवाज़ खो गयी।

मुझे लगा कोई भयानक दुर्घटना हो गयी है, जिसके अवसाद ने मुझे घेर लिया है। यह हमेशा के लिए हुआ है! अब फिर संयोग नहीं होगा। क्या मैं यही चाहता था? मुझे पता नहीं मैं क्या चाहता था?

मैंने उठकर खिड़की बन्द की। मगर बाहर की धुंध जैसे भीतर भी घुस आयी थी। रोशनी थी, मगर सब कुछ अस्पष्ट था—दीवारें, गलीचा, किताबें, यहाँ तक कि मैं! बल्कि सब से अधिक अस्पष्ट मैं खुद था।

पाँच

छत्तीस घंटे गुज़र जाने के बावजूद कुछ भी नहीं बदला था। मौसम साफ़ हो गया था। धूप खुल गयी थी और वातावरण हल्का हो गया था। अगर मन भी ऐसे हल्का हो सकता, तो क्या था।

मैंने यह सारा समय घर पर गुज़ारा था। बाहर निकलने की तबियत ही नही हुई। यहाँ तक कि उठने का भी विशेष आग्रह नही था। इच्छा थी कि केवल पड़ा रहूँ। बेचैनी मे कभी किताब पढ़ने की कोशिश की, कभी कमरे मे ही टहलने की। कही भी मन नही लगा।

सारी घटना का दबाव समूचे घर पर था। किसी की मृत्यु का असर जिस तरह हवा मे घुलता जाता है उसी तरह इस काण्ड का खौफ धीरे-धीरे छा गया था।

मैंने सोचा था कि बिंदो के जाने से मै अपने अपमान, घृणा और प्रेम सभी से मुक्त हो जाऊँगा। अपनी मुक्ति के लिए ही मैं शुरू से आखीर तक जाल रचता गया था। मगर जाल को जाल पहचानता है। शायद बिंदो ने तुरन्त ही समझ लिया था कि मैं उसे रौंद कर स्वयं स्वतन्त्र हो जाना

चाहता हूँ।

स्वतन्त्र होने के बजाय मैं पहले से ज्यादा परतन्त्र हो गया। मेरी इच्छाएँ जैसे मुझे छोडकर चली गयी थी और भीतर की सारी शक्ति ने अचानक ही जवाब दिया था। अपनी दुनिया मे वापस आ जाने, अपना समार प्राप्त कर लेने की कल्पना कितनी किताबी है, यह अपने संघर्ष में पराजित होने के बाद मालूम होता है।

दु.ख ने, जिसकी परिभाषा मुश्किल है, चारो तरफ से घेर लिया था। जो मरा हुआ है उससे कोई परेशानी नहीं—अपने अन्दर अचानक जाग उठी परछाइयाँ ही हिंस्र हो उठी हैं।

अगर केवल थकान होती तो मुक्त हुआ जा सकता था। मगर यह अवसाद भी न था और नैराश्य भी नही। धीरे-धीरे मैं समझने लगा था कि यह एक ऐसी ग्लानि है जिससे आदमी को एक-न-एक दिन गुज़रना पड़ता है।

यह नही कि मेरे मन मे बिंदो के प्रति फिर से प्रेम पैदा हो रहा था या यह कि स्मृतियाँ वापस आ रही थी। स्मृतियो के नाम पर कलह और तनाव के सिवा कुछ भी नही था। बिन्दो को लेकर आर्द्र होने का सवाल ही नही उठता था। मेरे उसके बीच यह रिश्ता बहुत पहले ही खत्म हो चुका था। मन मे अब भी वही कटुता थी, जो थी। मैं अपनी कटुता छिपा पाया भी नही था। जिस ढग से उसे व्यक्त होना था, वह हो चुकी थी। यह भी नही कि सारी कटुता, सारी घृणा से मैं हल्का हो चुका हूँ। मैं जानता हूँ यह ज़हर नही मरता। यह रंग बदलता है, धोखे देता है, पर मरता शायद कभी नही।

तख्त पर पड़े, फर्श पर टहलने, धूप मे बैठे मैंने डेढ़ दिन गुज़ार दिये थे। एक-एक क्षण जैसे दूभर था। अगर बाहर जाकर अपने लिए मुक्ति खरीद सकता, तो खरीद लेता। किसी की अन्तरात्मा मे पडी हुई जंजीरों

को कोई और तो तोड ही नही सकता, मगर क्या स्वय भी वह तोड सकता है ? मैं नही जानता। मगर मैं यह ज़रूर अनुभव करता हूँ कि मैं अपने अन्दर और भी जकड़ दिया गया हूँ। मैं जो कुछ करता हूँ उसकी परिणति यह होती है कि कैदखाने की दीवार कुछ और ऊँची हो जाती है। बरसों से घिरते जाने के बाद आज पहली बार यह अहसास हो रहा है कि मेरा स्वत्व, शायद नही है।

दोपहर को भोजन के बाद धूप मे पडा हुआ था कि किसी की आहट से आँख खुल गयी। अनिल था।

'क्या पडे हुए हो ?' मुझे सुस्त देखकर उसने कहा। वह बढिया सूट पहने हुए था, जिस पर वैसी ही टाई थी। 'उठो-उठो' उसने मेरी पीठ थप-थपायी। 'इस तरह स्वर्ग नही मिलता।' हालांकि यह बात उसने बिल्कुल सादगी से कही थी मगर मुझे शका हुई। धूप मे पडी हुई कुर्सी पर बैठ गया था। उसके चेहरे पर सुख था। उसे देखकर ही लगता था आज इतवार है।

'इस तरह क्या पडे हुए हो, भई !' उसने फिर कहा,'तुम्हें पडा देखकर मुझे भी नीद आ जायगी।' वह चुहल के मूड में था। वैसे उसका इस तरह आना मुझे अच्छा लगा।

'खाना खा चुके हो ?' उसने धूप से अपनी आँख बचाने के लिए कन-पटी एक पत्रिका से ढँक ली थी।

'हाँ। और तुम ?'

'खाकर ही निकला था।'

'किधर को।'

'यूँ ही। पिक्चर का इरादा है, बशर्ते टिकट मिल जाय।' फिर उसने अपने से ही बातचीत करते हुए कहा, 'ब्लैक में मिल जायेगा।'

मैंने पड़े ही पड़े करवट ले ली थी। धूप पीठ पर पड़ रही थी और शरीर के साथ मन का भी मौसम बदल रहा था।

'चलते हो।' उसने सिगरेट का धुंआ उड़ाया। एक बार इच्छा हुई कि तैयार हो जाऊं। मन बहल जायेगा। मगर फिर बाहर जाने की यह इच्छा उतर गयी। मैंने कोई उत्तर नहीं दिया।

'अगर चाहो तो, चलो। टिकट मिल जायगा।' वह अब तक टिकट की ही सोच में था। उसकी सारी चिन्ता सिनेमा का एक टिकट है। वह सचमुच सुखी है। मैंने करवट ली और पाया कि वह मुझे गौर से देख रहा था, बल्कि घूर रहा था। मैं उसे उसकी बातों के पार नहीं देख पा रहा था, मगर वह मुझे मेरे मौन के पार देखने की कोशिश कर रहा था। आँखें मिलीं तो वह मुस्कराया।

'उठो, उठो।' उसके कहने से मैं उठ गया था। मगर मैं जाना नहीं चाहता था। मैं जानना चाहता था कि वह क्यों आया है! क्या वह मुझे तकलीफ़ में देखना चाहता था या यह दोस्ती का फ़र्ज है? उसने ताड़ लिया। उसने कहा, 'मैंने सोचा था, तुमसे मिलता चलूं।'

हम दोनों धूप से उठकर भीतर आ गये थे। उसने दो-एक बार अपनी घड़ी में वक़्त देखा। यह चलने का इशारा था।

'मैं फिर आऊँगा।' मैंने कहा, 'आज नहीं।'

'मुझे पता था। मगर मैंने सोचा, पूछता चलूं। तुम्हारी भी तबीयत बहल जायगी।' उसने नीचे उतरते हुए कहा। मैं उसे पहुँचाता हुआ सड़क तक आ गया था।

अक्सर दूसरों की सहानुभूति अपने होने का अपमान लगती है। मगर कभी-कभी, किसी एक क्षण में, किसी की दया का स्पर्श समूची अन्तरात्मा को कृतज्ञ कर जाता है। मैं अनिल के प्रति ऐसा ही अनुभव कर रहा था।

इस समय उसकी सहानुभूति सच्ची थी। वह खिंचकर मेरे पास आया था उससे रहा नहीं गया। उसे पता था मैं किस नरक में था। वह मुझे इस नरक से निकालना चाहता था। मगर यह रास्ता नहीं था। मैं जानता हूँ मैं जहाँ भी जाऊँगा, मेरी छाया मेरे साथ जायगी। मैं उससे पीछा नहीं छुड़ा सकता, सारे ससार के बावजूद।

सड़क पार कर हम दोनों एक पान की दूकान पर रुके। उसे सिगरेट लेनी थी, मुझे भी। सब जगह छुट्टी थी। बगल की दो-मंजिला इमारत के नीचे पसरी हुई धूप मे लड़के खेल रहे थे। दूकान के पीछे ताश बिछी हुई थी। किसी को किसी की फिक्र न थी, सब अपनी उमग में थे।

अब उसने मेरे बहुत नज़दीक आकर आत्मीयता के साथ कहा, 'बिंदो बहुत दु खी थी।' इसका मतलब है, उसे सब मालूम है। वह उससे मिली थी। और वक़्त होता तो मुझे यह सुनकर बुरा लगता। मगर इस समय न बिंदो का विश्वास-भग बुरा लग रहा था, न अनिल की हिस्सेदारी।

'कब मिली थी ?' मैंने इतना ही पूछा।

'परसों।'

'परसो कब ?'

'तुमसे मिलने के बाद।'

'क्या कहा उसने ?'

'कहा कुछ नहीं, दुःखी थी !'

मुझे चुप पाकर उसने कहा, 'वह मुझसे केवल इतना कह गयी कि वह किससे बदला ले रहे हैं—मुझसे या अपने आप से ?'

यह बात बिन्दो ही कह सकती थी। इस सारे काड को जितना उसने समझ लिया था, काफी था।

'मेरे ख़याल में तुम उसे गलत समझ रहे हो।'

इसका अर्थ है वह अभी तक अनासक्त नहीं हुई है। या हो सकता है यह केवल एक वहम हो—यह भी एक दाँव हो।

'तुम, जहाँ उलझन नहीं है, वहाँ भी, उलझन पैदा कर रहे हो।'

अनिल मुझे नसीहत देकर चला गया था। अगर मैं सचमुच ही, खुद अपने लिए उलझन पैदा कर रहा होता, तो शायद, अपने से निपटना आसान था। मगर यह एक ऐसी परिस्थिति थी, जिसपर मेरा कोई वस न था।

मुझसे नहीं होगा! घर लौटकर मैंने कपड़े बदले और तैयार होने लगा। जैसे आत्महत्या के क्षण में मनुष्य किसी मानवेतर संकल्प से काम करता हुआ, हर संशय से मुक्त हो जाता है, वैसे ही मैं कुछ भी सोच-विचार नहीं कर रहा था। मुझे पता नहीं, मैं क्या करूँगा। अब यह भी नहीं जानना चाहता कि मुझे क्या करना चाहिए! यह तय है कि अब इस तरह नहीं चल सकता।

घर से निकलकर मैं पैदल चलता गया। इस तरह अगर मैं अनन्तकाल तक चलता रह सकता तो शायद उन नतीजों पर नहीं पहुँचता, जहाँ तक पहुँचना शायद मेरी नियति थी। बिन्दो के मकान का फासला थोड़ा ही रह जाने पर एक बार हिचक ज़रूर पैदा हुई, मगर फिर मैंने इस हिचक को एक झटके के साथ खत्म कर दिया।

यह एक विजेता का संकल्प नहीं था बल्कि एक हारे हुए व्यक्ति की आन थी। आत्म-रक्षा का और कोई तरीका नहीं था। पीछे लौटने पर दीवार थी जिससे टकराकर सिर फट सकता था। आगे क्या था, पता नहीं! हो सकता है केवल अंधकार हो!

मेरा खयाल था बिंदो लॉन पर बैठी मिलेगी—बुन रही या यूँ ही धूप का स्वाद लेती हुई। मगर घर पहुँच कर मालूम हुआ वह नहीं थी।

नौकर ने बताया वह सवेरे ही कहीं चली गयी थी। खाने के लिए भी नहीं आयी।

अब क्या करूँ? मैं इसी उधेड़-बुन में था कि नौकर ने मुझे हिम्मत बँधायी। उसने कहा कि वह बहुत करके लौटती ही होगी। इतनी देर कभी बाहर रहती नहीं। आज पहली बार ऐसा हुआ है। उसने प्रश्न भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा जैसे पूछ रहा हो, 'क्या आप बता सकते हैं ऐसा क्यों हुआ?'

कमरे में बैठते हुए एक बार फिर मेरी दृष्टि अपनी तसवीर पर गयी, जो चौखटे में मढ़ी, आले पर रखी हुई थी। उस पर धूल या बारिश का कोई असर इन तमाम वर्षों में नहीं हुआ था। इससे लगता था उसकी पूरी हिफ़ाज़त की गयी थी। अपनी तसवीर को देखते हुए लगा, मेरी तसवीर पर मेरा कोई अधिकार नहीं। यह कोई और आदमी है जो मुझे इस कमरे में अनधिकृत बैठा देख मुझ पर नज़र रख रहा है।

नौकर बार-बार कमरे में आकर मुझे देख जा रहा था। शायद वह यह जानना चाहता था कि मुझे किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं! जब मैंने उससे कुछ भी नहीं कहा तब थोड़ी देर में वह अपने-आप कॉफ़ी लाकर रख गया। मेरी तसवीर से मेरा मिलान कर उसने समझ लिया था कि मैं बिंदो का कोई खास आदमी हूँ। 'खास' और 'आम' के फ़र्क को मुँह लगे नौकर से अधिक कोई नहीं पहचानता।

उसके चले जाने पर मैंने कमरे को इतमीनान से देखा था। थोड़ी-सी चीज़ें थीं, शायद उतनी ही जितनी बिंदो के पास पहले होती थीं। इनी-गिनी किताबें, कुछ यूनिवर्सिटी की और कुछ हिन्दी-अंग्रेज़ी के चलते उपन्यास, बुद्ध की मूर्ति, एशट्रे, पायदान, कुशन और दो-एक मनपसन्द कुर्सियाँ। घर के मामले में बिंदो की रुचि आम रुचि से बहुत भिन्न नहीं

थी, जैसे कि लगभग सभी स्त्रियों की होती है। बस एक मनीप्लांट की कमी थी। वरना उसका यह कमरा, किसी भी नयी दिल्ली वाले का कमरा हो सकता था! इतने वर्षों के अन्तराल और इतने भ्रमण के बावजूद रुचि में परिवर्तन नहीं हुआ—आश्चर्य है!

बगल से लगा हुआ बिंदो का सोने का कमरा था। पर्दा हिलते ही भीतर की चीजें दिखायी पड़ती थीं। पलंग, वॉरड्रोब, अलमारी इत्यादि! बस ये ही दो कमरे थे। बिंदो पहले जिस जगह रहती थी, उससे यह जगह बहुत छोटी थी। केवल लॉन का सुख था। शायद उसने लॉन के लोभ से ही यह जगह ली हो! या वैसे ही! उसे बड़ी जगह की जरूरत थी भी नहीं!

बाहर लॉन पर धूप ढल रही थी। जैसे-जैसे शाम घिरती आ रही थी, वैसे-वैसे इस कमरे का, जहाँ मैं अकेला बैठा हुआ था, अकेलापन बढ़ता जा रहा था। बिंदो का नौकर फिर एक बार आकर देख गया था—शायद वह स्वयं बेचैन था। इसका मतलब है, नौकर खैरख्वाह है! और बिंदो को भी उस पर भरोसा होगा। इसीलिए उसने सारा घर उसे सौंप रखा है।

मैं उठकर उसकी किताबें टटोलने लगा था। लगभग सारा ही अध-कचरा साहित्य था। किताबों के रैक पर अचानक वह रूमाल नजर आया जिसे चिट्ठियाँ समेत, दो दिन हुए मैंने दिया था। रूमाल में चिट्ठियाँ वैसी-की-वैसी लिपटी हुई थीं। चिट्ठियाँ देखकर जी एक बार धड़का। उन्हें छूने की इच्छा भी हुई। मगर फिर मैं अपनी जगह पर लौट आया।

जिस चीज के लिए वह मुझसे लड़कर गयी, उसे इतनी लापरवाही से पड़ा देखकर हैरानी हुई! इसका क्या अर्थ लिया जाय? क्या यह कि लड़ना महज लड़ने के लिए था—चिट्ठियाँ केवल एक बहाना थीं। उसने चलते-चलते कहा भी था, 'मैं चिट्ठियाँ लेने नहीं आयी थी!' तो क्या

मेरी गलती यह थी कि मैंने वे चिट्ठियां वापस दे दीं या कुछ और ? अगर मैं चिट्ठियाँ वापस न देता तो क्या अन्त कुछ और होता, या वही, जो कि हुआ ?

मुझे लगा मैंने यहाँ आकर गलती की। शायद मैं जल्दबाजी कर गया। मुझे अपने पर काबू पाना था। मेरा संकल्प डगमगाने लगा। अगर मैं यहाँ से चला जाऊँ तो क्या बिंदो मेरे पास फिर आयेगी ? बिंदो के वापस आने के खयाल से हल्का-सा सुख भी हुआ और घबराहट भी। मैंने अपना ध्यान दूसरी ओर लगाने की कोशिश की। सामने रखी कॉफी की, जो अब तक ठंडी हो चुकी थी, चुस्कियाँ लेने लगा।

जब नौकर कॉफ़ी की प्याली समेट रहा था तब अचानक मुझे अनिल की बात याद आयी कि उसने उसे 'रीगल' के करीब देखा था। बिंदो में साहस की कमी नहीं थी—मगर वह अकेले घूमने वाली स्त्रियों में से नहीं थी। उसका इतनी देर अकेले बाहर रहना, सचमुच विस्मयकारी था।

'वह अक्सर बाहर जाती है !' मैंने नौकर से टोह लेना चाहा।

'कभी-कभी जाती है !'

'कितनी देर के लिए ?'

'घंटा-आध घंटा के लिए।' वह मेरे सवालों का उत्तर देता हुआ अपनी भी शंकाएँ सतुष्ट कर रहा था।

'किसी के साथ जाती हैं या अकेले ?' बिंदो का नौकर मेरे इस सवाल से चौकन्ना हुआ। फिर उसने तेजी से जवाब दिया, 'अकेले जाती हैं, अकेले आती हैं।'

मुझे उससे यह सवाल नहीं पूछना चाहिए था ! मगर पूछने और जवाब पा जाने के बावजूद पश्चात्ताप नहीं हुआ। बिंदो के प्रति मेरे मन में वह सम्मान नहीं रह गया था, जो मुझे रोकता। इसके अलावा भी मेरे

लिए यह विश्वास कर सकना कठिन था कि बिंदो निस्संग थी। उसका चिल्लाकर इतना कह देना काफी नहीं कि मैंने धोखा नहीं किया है।

मैं जिस स्त्री को छोड चुका हूँ, वह किसी और के साथ है, यह खयाल तकलीफ़ देता है। मेरे जैसे आदमियों को तकलीफ से अधिक ईर्ष्या और छटपटाहट होती है। मगर मैं तब से अब तक यह चाहता रहा हूँ कि बिंदो एक बार गैर के साथ सामने पड़ जाए। वह हर बार ऊपर उठ जाती है और मैं हर बार उसे गिरा हुआ देखना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि कम-से-कम एक बार ऐसा हो कि वह मुझसे आँखें न मिला सके। मगर ऐसा अब तक नहीं हुआ।

बाहर स्कूटर रुकने की आवाज आयी। मेरा अनुमान सही था। बिंदो ही थी। मैंने शेल्फ मे रखी हुई एक कोई भी किताब निकाल ली और उसे पढने का स्वांग करने लगा। मैं बिंदो के बिलकुल सामने नही पडना चाहता था। मैं साहस और इरादे के साथ बिंदो के घर आया था। मगर जैसे-जैसे आहट नज़दीक आने लगी दिल धडकने लगा—उस आदमी के दिल की तरह जो नौकरी से निकाल दिये जाने के बाद 'बॉस' के कमरे मे 'बॉस' का इतज़ार कर रहा हो।

मुझे देखते ही बिंदो ठिठक गयी। उसकी आँखें चमक उठीं। मुझे अचानक घबराहट हुई। कहीं ऐसा न हो कि वह मुझ पर बरस पडे। अगर ऐसा हुआ—उसने मुझे घर से निकल जाने को कहा, तो, क्या होगा! बिंदो को जितना मैं जानता था, उससे तो यह नहीं होना चाहिए था। मगर पिछले दिनो जो कुछ हो चुका था, उसका असर मेरे दिमाग पर था। मैं भूल नही सका था।

वह मेरे बिलकुल आगे से निकल कर अपने कमरे मे चली गयी थी। उसके हाथो मे कुछ बडल थे, शायद कुछ फल जैसी चीजें थी। उसने उम्दा

कांजीवरम साड़ी पहन रखी थी और उसकी मुखाकृति प्रसन्न थी। वैसे भी वह बहुत खुश होने पर ही खूबसूरत कपड़े निकालती थी।

कमरे मे जाकर उसने कपड़े नही बदले। उसी साड़ी मे वापस आयी। उसके ओठो पर मुस्कान थी। उसकी प्रसन्नता समझ नही आ रही थी ! वह कैसे अपने आप से इतनी जल्दी मुक्त हो गयी थी ? कटुता का कोई चिह्न भी न था। या सारी कटुता, सारा क्रोध मेरे लिए था ? मेरी गैर-हाजिरी मे वह फिर सुखी हो जाती है ? स्त्रियां कुछ चीजो से सुखी होती है। खरीदारी, सिनेमा, फूल, चुम्बन—कोई भी चीज उन्हे सुखी बनाने के लिए काफी है।

मुझसे जरा दूर पड़ी तिपाई पर बैठते हुए उसने मुझे विश्वास की दृष्टि से देखा, जैसे कहना चाहती थी, मैं जानती थी, तुम आओगे। उसे अपनी ओर देखता पा कुछ परेशानी हुई, जिसे उसने ताड लिया। उसने सहज स्वर मे कहा, 'मैं बाजार चली गयी थी। खाना भी उधर ही खाते हुए देर हो गयी।' यह स्पष्टीकरण देने की वैसे कोई जरूरत नही थी—मैंने मांगा भी नही था। हो सकता है, वह मुझे आश्वस्त करना चाहती हो।

मैंने 'कोई बात नहीं' के अदाज से उसे देखा। इसके पहले कि मैं कहूँ, 'मैं कॉफी पी चुका हूँ,' वह किचन की ओर जाकर कॉफ़ी के लिए बोल आयी।

मैंने गौर किया, विदो की चाल में पहले से ज्यादा आत्म-विश्वास आ गया है। लौटकर वह नजदीक बैठ गयी थी। वहाँ बैठकर उसने शैल्फ की ओर देखा जहाँ रूमाल मे लिपटी हुई चिट्ठियाँ पड़ी थी। उसे उस ओर देखता देख मैंने अपनी नजर झुका ली। गोद मे पड़ी किताब के पन्ने पलटने लगा। जब निगाह उठायी तो पाया वह मुस्करा रही थी। उसकी मुस्कान

में आत्मीयता थी जिसने छुआ। वह भरपूर दृष्टि से मुझे देख रही थी।

'मुझे उस दिन की घटना के लिए अफसोस है,' कहते हुए मेरा स्वर कांप रहा था। मैंने यह बात बिना किसी लपेट के कही थी। मैं उसे मनाने के लिए नही आया था। जैसे अधा आदमी सीधा जाकर एक जगह टकरा जाता है--और वही उसका गंतव्य होता है--वैसे ही बिंदो मेरा गंतव्य थी। बिंदो के लिए मेरे मन में न सुख था, न दुख! मगर विक्षोभ जरूर था।

'मुझे उस दिन की घटना के लिए अफसोस है।' यह सुनते ही बिंदो की आँखें भभकी। जिन आंखों में क्षण-भर पहले स्निग्धता थी उनमें अब प्रतिहिंसा थी--जैसे उस दिन का आदमी कोई और था, मैं कोई और हूँ। मैंने गलती की। शायद मुझे स्मरण नही दिलाना था। बिंदो का क्रोध तो दूसरे ही क्षण पिघल गया था। मगर वह स्वयं को निर्विकार तुरन्त नहीं कर सकी थी--कॉफी की प्यालियां पकड़े हुए उसकी अंगुलियाँ कांप रही थी।

मेरी इच्छा हो रही थी मैं उससे दोबारा माफी माँगू। शायद इस बार अपना अफसोस जाहिर करने से वह पूर्ववत् हो जाए। मगर इसकी जरूरत नही पड़ी। वह खुद पहले की तरह मुलायम पड़ चुकी थी। जिस आत्मीयता से उसने मेरा स्वागत किया था उसी आत्मीयता से वह मेरी प्याली में चीनी हिला रही थी। एक-दूसरे की प्याली में चीनी हिलाने का समझौता अकसर ऐसे युगल मे होता है जिसमें प्रेम बस चुका होता है। बिंदो को चीनी हिलाते देख मैं चौंका। इतने अधिक विश्वास में घबराहट होती है। मैंने जल्दी से प्याली अपनी ओर खीच ली और गरम कॉफी की प्याली ओठों तक लाकर चुस्की लेने लगा।

'हर चीज़ का दाम बढ गया है।' बिंदो ने फिर बातचीत का सूत्र पकड

लिया था। 'मामूली-सी चप्पल पन्द्रह से कम मे मिलना मुश्किल है।' यह कह कर उसने अपने पैरों की तरफ देखा। मैंने भी उसका साथ दिया—उसकी चप्पलें देखने लगा!

'एक बार बाजार जाने का मतलब है सौ रुपये! गरीब आदमी तो जी ही नही सकता!' विदो अपने आप से बात कर रही थी। उसकी घरेलू बातो के बावजूद मैं सुविधा का अनुभव नही कर रहा था। लगता था फँसा हुआ हूँ।

'और कॉफी लेंगे?' उसने अभ्यस्त गृहिणी की तरह सवाल किया।

'नही।' मैंने तुरन्त उत्तर दिया। दो कप कॉफी पीने से वैसे ही भारी लग रहा था।

'यहाँ बैठेंगे या बाहर?' अपनी प्याली में दोबारा कॉफी डालते हुए उसने पूछा।

मैं क्या उत्तर देता। फिर उसने स्वय ही अपने प्रश्न का उत्तर दिया, 'बाहर तो धूप जा रही है। यही ठीक है।' यह कहकर उसने हीटर नजदीक कर दिया। मुझे याद आया, दो दिन पहले मैंने हीटर उसके पैरों के निकट रख दिया था तो उसने पैर खिसका लिये थे, जैसे त्वचा झुलस गयी हो। अब वही विदो हीटर की गरमाई में सूरजमुखी की तरह अपनी पखुडियाँ खोल रही थी।

'यह किताब पढ़ी है आपने?' उसने मेरी गोद मे पडे हुए 'पिकविक पेपर्स' की ओर इशारा किया। मुझे किताब मे कोई दिलचस्पी नहीं थी—वैसे भी विदो का सवाल फूहड था। लडकियाँ जब भी साहित्य या कला पर आती हैं, कोई न कोई बेवकूफी की बात कर जाती है—अकसर तो शुरुआत ही बेवकूफी से करती हैं।

इतने साल साथ रहने के बाद भी क्या उसे पता नही था कि किताबें

पढ़ते हुए मैने जिन्दगी गुजार दी। 'हूँ।' मैने कहा। बिंदो का सवाल जितना प्रायमरी था, मेरा उत्तर उतना ही प्रोफेसराना था। मैंने किताब सोफे पर बगल में रख दी थी।

वह उठी। 'मै कपडे बदल आऊँ।' यह कहती हुई वह अपने कमरे में चली गयी। उसके अन्दर जाने से पर्दा और भी एक किनारे हो गया था और कमरे का सारा दृश्य नंगा हो गया था। मैं बखूबी देख सकता था कि आईने के सामने खडी होकर वह किस तरह कपडे बदल रही है। मगर यह देखने मे मुझे कोई दिलचस्पी नही थी। मैंने अपना मुँह फेर लिया था।

'बेडरूम छोटा है।' उसने बाहर आते हुए कहा। 'जगहें महँगी हो गयी हैं। इतने-से मकान के तीन सौ रुपये। पर लॉन अच्छा है।' वह ठीक मेरे सोफे पर आकर बैठ गयी थी। उसने सादी साड़ी पहन ली थी और चेहरे का मेकअप धो लिया था।

अभिनेत्रियाँ ऐसी ही होती होगी! मैंने सोचा। क्षण-क्षण मे रूप बदलता है—प्रेम का स्थान घृणा, घृणा का स्थान क्रोध, क्रोध का स्थान करुणा और करुणा का स्थान आत्म-प्रताड़ना ले लेती है। बिंदो की दुनिया सचमुच विविध और नाटकीय है।

पास आने से बिंदो के शरीर की गंध नथुनो मे समाने लगी थी। यह मेरी पहचानी हुई गंध थी, जिसे मैं करीब-करीब भूल चुका था। बरसों पहले कभी छटपटाहट के क्षणो मे यह गंध अपने भीतर से उठने लगती थी। मगर पिछले कुछ बरसों में यह बिल्कुल ही बिसरायी जा चुकी थी—जैसे बीमार के बाद जबान का स्वाद जाता रहे।

बिन्दो के नजदीक आ जाने से मैंने और भी असुविधा महसूस की। जो किताब रख दी थी, वह फिर उठा ली और पन्ने पलटने लगा। बिन्दो ने ताड़ लिया था, कि मैं अपने को अड़चन में पा रहा हूँ। उसने उठकर

हीटर का मुँह मेरी ओर कर दिया और फिर सोफे पर अपनी जगह पर बैठ गयी।

'आपकी तबीयत अच्छी नहीं लगती !' सहसा उसने कहा, 'ए० पी० सी० दूं ?' मैंने उसे गौर से देखना चाहा। उसकी बात में व्यंग्य है या सहानुभूति ? कहीं वह सचमुच मेरे लिए दवा न ले आये, इस भय से मेरे मुँह से फौरन निकला, 'नहीं-नहीं मैं बिलकुल ठीक हूँ।'

'कहाँ ठीक है ?' वह बच्ची की तरह मचली। 'नाड़ी देखूं,' यह कह कर उसने अपना हाथ मेरे हाथ की तरफ बढ़ा दिया। मुझे लगा वह मेरे साथ खिलवाड़ कर रही है। मैं इस तरह के खेल से बहुत घबराता हूँ।

जब उसने मेरी नाड़ी पर हाथ रखा तब मैंने अपना हाथ खींच लिया। बिंदो मेरा मखौल कर रही है ! मैं उसके घर आया—ग्लानि से या विक्षोभ से, या कैसे भी ! इसका यह अर्थ नहीं कि उसे मेरी बेइज्जती का हक हासिल हो गया। किसी शरमीले नौजवान से ढीठ लड़कियाँ जैसा व्यवहार करती है, बिन्दो मेरे साथ वैसा ही व्यवहार कर रही थी ! उसे पता है कि मैं इस तरह का शरमीला लड़का नहीं हूँ। यह केवल एक परिस्थिति है—जिसका, इस स्तर पर उतर कर, फायदा उठाना सरासर टुच्चापन है ! और यह बात मेरे लिए कोई नयी नहीं थी—बिंदो में अगर कहीं कोई ऊँचाई थी तो उतना ही टुच्चापन भी था।

उसकी इस हरकत पर मुझे आवेश भी हुआ। अचानक जैसे, अपना अभिमान और पौरुष जाग उठा। जिन हाथों को वह कायर साबित करना चाहती है, उन्होंने उसका पेटीकोट भी उतारा है, उसके उन्नत वक्षों को मसला भी है और न जाने कितने अवसरों पर उसे सहारा दिया है।

आपद्धर्म से बचने के लिए वह बाथरूम की ओर चली गयी थी। मगर यह मेरा वहम था। बिंदो—जैसी लड़कियों के लिए आपद्धर्म जैसी कोई

चीज़ नहीं—वे दूसरों को संकट में डालती हैं। वे उलझाती हुई वहाँ तक ले जाती हैं, जहाँ से निकलने का कोई रास्ता नहीं होता।

पहली बार जब विंदो से मुलाकात हुई थी तब उसने स्कूटर पर बैठने का प्रस्ताव किया था। उसका यह अनोखा प्रस्ताव मेरी समझ में नहीं आया। मगर थोड़ी देर के बाद जब कंधे-से-कंधे टकराने लगे और वह मुझ पर हिचकोले खाने लगी तब सब समझ में आ गया। अगर स्कूटर न होता तब भी वह कोई-न-कोई रास्ता निकाल लेती।

दूसरी बार उसने मुझसे कहा कि मैं उसका हाथ देखकर उसका भविष्य बताऊँ। मुझे हाथ देखना नहीं आता और इस विद्या पर मुझे कोई विश्वास नहीं। मगर उसने मुझसे इस तरह इसरार किया कि मुझे यह मानना पड़ा कि मुझे यह विद्या आती है। वह भी जानती थी कि मैं झूठ बोल रहा हूँ और मैं भी जानता था कि वह जानती है कि मैं झूठ बोल रहा हूँ। हम दोनों की शुरुआत ही झूठ से हुई थी। मगर शायद सबकी शुरुआत झूठ से होती है। अगर झूठ न हो तो शुरुआत का कोई ज़रिया न रहे।

स्कूटर पर उसके साथ हिचकोले खाते हुए मुझे अपनी साँस रुकती हुई लगी थी और उसका हाथ देखते हुए मुझे कँपकँपी होने लगी थी। वैसे मैं भीरु व्यक्ति नहीं था। मगर प्रेम में पड़ते हुए आदमी घबराहट और आशंका का अनुभव करता है—प्रेम उसे आश्वस्त नहीं करता, अनिश्चित, शंकालु और असहाय बनाता है।

हाथ उसने बढ़ाया था और शुरुआत उसी की ओर से हुई थी। जब समय आया तब उसने स्वयं ही अपना हाथ खींच लिया। वह अनुभवी स्त्री नहीं थी, मगर उसमें अनुभव का स्थान प्रतिभा ने ले लिया था। अपनी प्रतिभा से उसने वह किया जो और स्त्रियाँ अनुभव से करती हैं।

यह मैं नही मान सकता कि मुझमे पुरुषत्व की कमी थी—तब भी नहीं थी और शायद अब भी नही ! फिर वह क्या चीज़ थी जो मुझे घेरती गयी, बाँधती गयी, मुझे दास बनाती गयी ? मैं नहीं कह सकता, मैं नहीं जानता। सब कुछ जानने का दावा करने वाले भी जानते हैं, कुछ चीजे जानी नहीं जातीं—किसी की ज़िन्दगी की कोई चीज़, किसी और की ज़िन्दगी की कोई और चीज। शायद बिंदो मेरी जिन्दगी की वही चीज़ है।

बाँथरूम से लौटकर बिंदो ने शॉल कधे पर डाल लिया था।

'आइये, यहाँ बडी सर्दी है, भीतर बैठें।' भीतर से उसका मतलब उसका निजी कमरा था। मुझे कोई आपत्ति नही थी—वैसे सर्दी दोनों ही जगह समान थी।

कमरे मे मद्धिम रोशनी थी, जिसमे सब कुछ सोया हुआ नजर आता था—बिस्तरा, कुशन, वॉरड्रोब और मेज़ पर रखी हुई बिंदो की तस्वीर। एक क्षण को मुझे लगा मैं एक अजनबी ससार मे आ गया हूँ। किसी स्त्री के बैडरूम मे प्रवेश करते हुए वैसे हिचक होती है ! यह हिचक तो नही थी क्योंकि यह पहला मौका नही था। मगर मैं भूल जरूर चुका था। इसलिए पहले-पहल जगह अनजानी लगी। फिर धीरे-धीरे हर चीज अपनी असलियत मे दिखने लगी।

मैंने अब कमरे पर दोबारा गौर किया और पाया कि उसमें सादगी होते हुए भी विधवा का-सा सूनापन नही था; बल्कि एक अनुभवी स्त्री का तीखा आकर्षण था। थोडी-सी चीज़े मगर करीने से। कमरे की पुताई, लगता है, थोडे दिनो पहले हुई थी, शायद दीवाली के दिनों में। दीवारो पर कलई चढी हुई थी।

मैं बिस्तरे से ज़रा नज़दीक पड़े सोफे पर बैठ गया था। उसने बेझिझक सामने रखे एक मोड़े पर अपने कूल्हे टिका लिये थे। मैंने पाया कि उम्र के

साथ विंदो का शरीर जरा भारी हो गया था—वैसे वह पहली नजर में दुबली नज़र आती थी।

वह मेरे इतने नजदीक थी कि उसके वस्त्रों की खुशबू मेरे वस्त्रों पर उड-उड कर बैठ रही थी। वह झुकी हुई थी, जैसे मेरे चेहरे की रेखाओं को पढ रही हो।

अचानक उसने कहा, 'क्या आप पिछली बातों को भूल नही सकते?' यह बात उसने अपने मुंह से पहली बार कही थी, मगर उसकी भंगिमाएं, उसका रुख अब तक बराबर यह बात कहते थे। इस तरह के सवाल के पीछे याचना होती है। मगर विंदो ने जिस तरह यह बात कही थी उससे लगता नही था कि वह याचना कर रही है। लगता था जैसे वह एक अर्से से झुंझलायी हुई थी और आखिर हारकर उसने यह कहा है।

जैसे ही उसने यह सवाल किया वैसे ही मेरा सारा स्वत्व जाग उठा! अपने अन्दर का अभिमान, अपना सारा अपमान, अपना कुचला जाना! मुझे सवालों के सीधे उत्तर देने की आदत है—इसलिए मैं कई बार बेवकूफी की बात कर जाता हूँ। इस बार भी जबान पर आ ही गया था कि 'नही भूल सकता।' मगर मैंने अपने को दबा लिया।

उसने दोबारा मुझे निगाह उठाकर देखा जैसे मुझे तोल रही हो। मैंने भी अपनी निगाह नीची नही की।

'मै सोचती थी आप भूल चुके होंगे!' उसके ओंठो पर व्यंग्य की रेखा खिंच गयी।

'बात क्या हुई?' मैंने अपनी शक्ति इकट्ठा करते हुए कहा।

'मै यही सोचकर आयी थी।'

विंदो नाटक करना जानती थी। जब भी बात बहुत बढती और टूटने की नौबत आ जाती वह एकदम कातर हो जाती। मगर इस समय वह

कातर है, नाटक कर रही है या सच्चे मन से अपने को खोल रही है, यह समझ सकना आसान नही था। बिंदो छल को भी सच्चाई की तरह पेश करने की कला मे इतनी माहिर हो चुकी थी कि असल और नकल का भेद ही समाप्त हो चुका था।

जो भी हो, मैं अपने को कैसे भूल जाऊँ। केवल बदले का सवाल नही। बदला लेना आसान है। बदला न लेते हुए अपनी हिफाजत कर पाना मुश्किल है! एक तरह से बिंदो का सवाल सही था। मैं पिछली बातो को भूल चुका था। बिंदो ने ही आकर फिर से याद दिलायी। अगर वह न आयी होती तो मैं इस बिंदो को नही पहचानता। यह एक दूसरी ही पहचान थी और एक और ही सकट था।

'मैं बात मन मे नही रखता।' अचानक मेरे मुंह से निकला और मैंने फ़ौरन महसूस किया मैंने गलती की। मुझे यह बात कतई नही कहनी चाहिए थी। यह कहकर तो मैंने मैदान छोड दिया। बिंदो की आँखे चमकी—गोया वह मुझसे यही सुनना चाहती थी। मैंने पाया उसकी आँखों मे कृतज्ञता नही थी (कोई और स्त्री होती तो होती) बल्कि एक दबग और आक्रामक आत्मविश्वास था जो कि शायद मेरे इस आत्मस्वीकार से पैदा हो गया था।

मगर यह क्या सचमुच ही मेरा आत्मस्वीकार था? क्या मैं सचमुच ही कोई बात मन में नही रखता? क्या बिंदो के लिए मेरे मन मे घृणा नही थी? अब मैं पाता हूँ कि नही थी। मुझे यह वहम था कि मैं बिंदो से घृणा करता था।

अपनी जगह पर बैठी हुई वह मुझ पर इतनी झुक गयी थी कि उसके चेहरे का अक्स मुझ पर पडने लगा था। उसकी पिंडलियाँ मेरे घुटनों को छूने को थी। मैं अपनी जगह पर कसमसाया नही। उसे बरदाश्त करता

रहा।

तब उसने मेरा हाथ अपने हाथों मे ले लिया! 'क्या सचमुच तुमने मुझे माफ कर दिया?' वह एकदम अभिनेत्री की तरह अपना डायलॉग बोल रही थी। मुझे हँसी आ गयी। और कभी ऐसा हो जाने पर वह हाथ छोड देती और झुझला पड़ती। मगर इस बार उसने मुझे नही छोड़ा—छोड़ सकती भी नही थी!

उसका हाथ ठण्डा नही था, मगर मुझमे कोई नरमाई नही थी। मुझे लगा बिंदो चालाक होने के साथ-साथ पागल भी है। वह इस समय पागलों जैसा व्यवहार कर रही है। कही इस तरह समझौता होता है! लेकिन बिंदो समझौता नही, मिलन चाहती थी।

'तुमने बताया नही!'

कभी-कभी अपना ही शरीर गिलगिला लगता है। मेरा ठण्डा, बदबूदार हाथ मुझे एक मरी हुई पिलपिली-सी चीज-सा लगा। अगर मैं इसी तरह निश्चेष्ट रहा तो मेरा सारा बदन गिलगिला लगने लगेगा।

मैंने अपना हाथ छुडाने की कोशिश की—मगर बिंदो इसके लिए राजी नही थी। उसने अपनी पकड़ ढीली नही की।

मैंने कोई अन्तिम बात नही कही थी। मगर वह मनमाने निष्कर्ष निकाले जा रही थी। उसने यह कैसे विश्वास कर लिया कि सब कुछ हल हो चुका है, जबकि मैं पिछले कई दिनो से उसे यह अहसास कराने का प्रयत्न कर रहा हूँ कि कुछ भी हल नही हुआ है।

अचानक वह उठ खडी हुई। उसने शॉल अच्छी तरह लपेटते हुए कहा, 'खाना लगवाऊँ।' उसकी बात सुनकर मुझे फिर चकित होना पडा। मैं निमत्रण पर नही आया था—मैं जिस तरह आया था उसमे रस्म अदायगी

की भी गुंजाइश नहीं थी। बिलकुल ही विपरीत परिस्थितियों में किसी का इस तरह उत्साह मे भर जाना और भी उलझन पैदा करता है।

'अंगुली पकडकर पहुँचा पकड़ने' वाली कहावत मशहूर है। फिर बिंदो ने तो अगुली नही मेरा हाथ पकड़ लिया था। मैं अब भी अपना हाथ छुडा सकता हूँ। केवल एक झटके की जरूरत है!

'नही, मै खाना नही खाऊँगा!' मैंने तेजी से कहा। औरतें इस तरह की तेज़ी से आतंकित होती हैं और पहले से भी ज्यादा लिपटती हैं, यह सोचकर मैंने ढील देते हुए कहा, 'मुझे किसी से मिलना है। साथ ही खाना है।'

बिंदो और चीजो की तरह मेरे झूठ को भी पहचानती थी। उसने मेरी आँखो को उलझाते हुए कहा, 'जिससे भी मिलना हो, फ़ोन किया जा सकता है। कोई बहुत ही जरूरी एन्गेजमेट हो तो बात और है।' उसने प्रश्न भरी निगाह से मुझे देखा और कुछ देर खडी रही। मुझे निरुत्तर पा उसने कहा, 'फ़ोन इधर लाऊँ?' मैं जानता था यह मुझ पर व्यंग्य है। मैंने अपनी निगाह नीची कर ली!

बाहर जाकर दो मिनट मे वह लौट आयी जैसे कुछ पूछना भूल गयी हो। और सचमुच वह भूल गयी थी। मगर जो कुछ उसने पूछा, वह इतना अटपटा और आकस्मिक था कि पहली बार मैंने महसूस किया बिंदो ने सचमुच अपने को एक दूसरे ही अक्स मे ढाल लिया है। पहले बिंदो से चिढ होती थी, मगर अब डर लगने लगा। स्त्री का प्रस्फुटन, परिस्थितियों के साथ, किस रूप में होगा, पता नही चलता। वह अपनी अचानक सुन्दरता, अप्रत्याशित प्रेम में केवल मोहती नही, डराती भी है। यह एक छोटे-मोटे विस्फोट की तरह होता है।

कमरे की दहलीज पर पैर रखे हुए उसने मुझसे पूछा, 'क्या पियेंगे?'

यह सवाल वह मुझसे कभी नहीं कर सकती थी। नशे से उसे नफरत नहीं थी, मगर मेरा नशा करना उसे बरदाश्त नहीं था। जब भी मैंने पी होती, लड़ाई होती। वह विवाहिता स्त्री की तरह कुढ़ती और गुस्सा करती। या तो अपनी जिद मे या मुझ पर अपना अधिकार जता कर अपनी गृहिणी की कल्पना साकार करने के लिए वह मुझे कसमें दिलाती कि आगे मैं कभी नही पिऊँगा—जबकि मैं खुद कभी-ही-कभी, सोहबत में या किसी दावत मे ही, पीता था।

शराब ही नही, सिगरेट के लिए भी उसने कसमें दिलायी थी। हर स्त्री, इसी तरह, यह प्रदर्शित करती और अपने को विश्वास दिलाती है कि वह स्त्री है। अगर स्त्रियों मे ये अभिमान-जनित प्रार्थनाएँ न हो तो उनमें वह चीज भी नहीं होगी जो कि खींचती है और पुरुष को यह अनुभव कराती है कि वह केवल अपने लिए नही है—उसके स्वत्व में हाथ डालने का अधिकार किसी और को प्राप्त है!

जब तक मैं 'हाँ' या 'ना' कहूँ उसका नौकर सारा सामान लाकर रख गया। उसने मुझे निगाह उठाकर देखा भी नही, जैसे इस प्रसंग से और भी डर गया हो।

'बाज़ार जाकर बर्फ भी ले आओ।' उसने उसे डाँटते हुए आदेश दिया। फिर अपनी गलती महसूस कर अपना स्वर बदला, 'बर्फ रहने दो, गरम पानी ले आओ!'

सामने रम की एक सीलबन्द बोतल रखी हुई थी।

'यह किसके लिए आयी थी?' मैं सहसा ही सवाल कर बैठा। मेरी जिज्ञासा स्वाभाविक थी।

उसने मुझे इस तरह देखा जैसे मैं कोई फूहड़ सवाल कर बैठा होऊँ। तुम्हें इतना भी पता नहीं कि एक दिन तुम यहाँ आओगे और इसी तरह

तुम्हारा स्वागत होगा ! तुम स्वागत की इस भाषा से अजनबी हो ? मैं भी अभ्यस्त नहीं हूँ, शायद तुमसे भी ज्यादा अजनबी हूँ ।

अपनी नियति को कोई नही जानता । जो दूसरो की नियति जानता है, उससे अधिक खौफनाक कोई नही हो सकता । बिंदो को मेरी नियति का शायद बरसो से पता था । आँख उठाकर मैंने देखा, वह मेरे सामने, मेरी तकदीर की तरह खडी थी ।

गिलास मे डालते हुए मैंने उसे 'और तुम ?' की दृष्टि से देखा । मेरा प्रश्न भाँप कर वह मुस्करायी । शराब तसल्ली नहीं देती—तसल्ली के लिये मैंने कभी नही पी । वह नसो मे गरमी पहुँचाती है । धडकन मे एक नयी धड़कन पैदा करती है । थोडी देर तक घूँट लेते रहने के बाद, यह देखने के लिए कि क्या वह मुझे हिकारत से देख रही है, जब मैंने उसे कनखी से देखा तो पाया कि वह सारे दृश्य का मजा ले रही थी । उसकी अगुलियाँ थिरक रही थी ।

अचानक पकडी जाने पर उसने अटपटा कर पूछा, 'कितने बजे है ?' फिर अपने सवाल से स्वय ही हतप्रभ होती हुई बोली, 'कोई जल्दी नही !'

मैं जानता था उसे कोई जल्दी नही । वह समझ चुकी है कि हर चक्र उसी जगह आकर रुकता है जहाँ से आगे घूमने की शक्ति उसमे नही रहती है । उसे पता था कि मेरी प्रतिभा क्लान्त हो चुकी है और मुझे भी इसकी अनुभूति उसके आते ही हो चली थी जैसे रोगी को आसन्न-मृत्यु का आभास होता है ।

मगर शराब ने इस आसन्न-मृत्यु को रोक दिया । भीतर सारा विप्लव जाग उठा था और बदन उत्तप्त हो चला था । बिंदो के लिए जो भी क्रोध और नफरत थी, वह सतह को तोड़कर बाहर आने लगी थी । मैंने जल्दी-

जल्दी शराब और भी ले ली !

यही मौका है। फिर यह अवसर नहीं आएगा। नशे में मैं अपनी समर-नीति तय करने लगा। इस वक्त मैं विंदो को अपमानित कर दूँ, कुचल दूं, तो वह पूरी तरह टूट जाएगी। उसके टूट जाने के खयाल से मुझे खुशी हुई।

'सिगरेट !' मेरे मुंह से निकला। मेरी सिगरेट खत्म हुए बहुत देर हो चुकी थी और अब रहा नहीं जा रहा था।

विंदो ने कहीं से लाकर तुरन्त हाज़िर कर दिया। तो यह इन्तज़ाम भी था। मगर अब उस पर मुग्ध होने का वक़्त नहीं—और न ही यह अवसर है। इस समय विंदो के सारे कौशल को चाक कर देना चाहिए। आगे बढ़ो! मैंने स्वयं को प्रोत्साहित किया और अधिक नहीं करना पड़ा।

'घटिया !' मैंने चटखारा लेते हुए कहा।

'क्या ?' वह ज़रा-सा चौंकी।

'तुम घटिया हो !' मैंने धड़ल्ले से कहा और जानना चाहा कि उस पर क्या प्रतिक्रिया हुई।

उसकी आंखों में क्षण-भर को हिंसा की लपट उठी और बुझ गयी। उसने अपनी क्रूर, बर्बर आत्मा को जैसे मुट्ठी में दबा लिया। वह हँसी।

'तुम मुझे दोबारा नहीं कुचल सकती।'

'मैंने कहा न, क्या तुम पिछली बातें नहीं भूल सकते ?'

'नहीं भूल सकता।' मैंने सोचा था विंदो अब झल्ला पड़ेगी और मामला ठीक हो जाएगा। मगर वह झल्लायी नहीं। उसमें कोई बेचैनी भी पैदा नहीं हुई। उसकी आंखों में हल्का-सा दुःख नज़र आया। शायद वह पैदा हुई स्थिति से दुःखी थी।

'खाना तैयार है।' उसने पैंतरा बदला। मगर मैं भी तैयार था। 'खाने में मेरी दिलचस्पी नहीं।' मैंने कहा, 'मैं तुमसे साफ-साफ बातें कर लेना चाहता हूँ।'

उसने कोई उत्तर नहीं दिया। उसके चेहरे पर घबराहट थी। शायद उसे यह उम्मीद नहीं थी। उसने नहीं सोचा होगा कि मैं उसे अचानक ही नंगा करने लग जाऊँगा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। वह चाह कर भी, अब, इस स्थिति के नतीजों से बच नहीं सकती थी। उसकी परेशानी देख मैंने बरसों बाद अपने को ताकतवर अनुभव किया।

'सुनो।' मैंने कहा, 'तुम अगर समझती हो कि मेल हो सकता है, तो तुम्हें वहम है! तुम जैसी औरत से किसी का प्रेम नहीं हो सकता। तुम तोड़ती हो। तुममें घमंड है। तुम अपने दर्प में किसी को नहीं पहचानतीं। तुम्हारे साथ बीता हुआ जीवन नरक था। मैं एक बार इस नरक से किसी तरह निकल आया। अब तुम दोबारा क्यों आयी हो? मुझे शान्ति से क्यों नहीं रहने देतीं। तुम जाओ या फिर मैं जाता हूँ!'

मैंने कड़वी बातें कही थीं। इतनी सारी बातें सुनने के बाद कोई भी स्त्री बिखर सकती थी। कमजोर स्त्री का हृदय तो हमेशा के लिए टूट सकता था। मगर बिंदो अद्भुत स्त्री है। जैसे-जैसे मैं कहता गया वैसे-वैसे उसका चेहरा कठोर और भावहीन होता गया। जब तक मैं अपनी बात समाप्त करूँ तब तक वह उठ चुकी थी।

'खाना ठण्डा हो जायेगा। ये सब बातें तो आप कल सवेरे भी कह सकते हैं।'

मैं अभी कहूँगा, इसी वक़्त कहूँगा!' मेरी इच्छा हुई मैं चिल्लाकर कहूँ और उसे खींचकर एक तमाचा लगाऊँ। लेकिन वह मुझे सहारा देकर उठाने लगी थी। वह मुझे यह अनुभव कराना चाहती थी कि मैंने ज्यादा

पी ली—यह बिंदो के डिमॉरलाइज करने के कई तरीकों में से एक था। मैंने पी जरूर ज्यादा थी। मगर हालत ऐसी नहीं हुई थी कि मुझे किसी का सहारा लेना पड़े।

ताव में आकर मैंने अपनी बाँहें छुड़ायीं और गिलास में और भी रम डाल ली। सारा का सारा गिलास मैं लगभग एक घूंट में पी गया। अभी तक कलेजे में आग जल रही थी, इस घूंट ने अंतड़ियों में भी आग फूंक दी।

साथ लगे बाथरूम में घुसते हुए पैर एक बार जरूर लड़खड़ाये मगर विशेष नहीं। सब चीजें यन्त्र की तरह अपने आप अपना काम कर रही थीं।

'मुझे भूख नहीं।' खाने की मेज पर बैठते हुए मैंने कहा। वैसे यह मैंने झूठ कहा था। मुझे भूख देर से लगी हुई थी और शराब ने और चीजों की तरह भूख को भी भड़का दिया था।

'खाना यह अच्छा बनाता है। इससे पहले कई अच्छी जगह रह चुका है। दो साल तक एक एम्बेसी में था।' वह बात को बार-बार खाने पर केन्द्रित करने का प्रयत्न कर रही थी। मैं समझ गया वह नहीं चाहती कि मैं पिछले प्रसंग पर वापस जाऊँ।

शायद खाना खिलाते वक्त स्त्रियाँ बैर को भूल जाती हैं। उनका प्रेम खाना परोसते समय उमड़ आता है, बल्कि मैं तो यहां तक कहने को तैयार हूँ कि उसी समय उमड़ता है। बिंदो इतनी आत्मीयता और तल्लीनता से, मेरे लिए, प्लेटों पर सब्जियाँ सजा रही थी कि मेरे मन में फिर सराहना का भाव पैदा होने लगा। मगर अब मैं भी कारीगर हो चुका था। मैंने अपनी भावना को तुरन्त दबा लिया।

अच्छी खासी दावत थी। शायद उसने नौकर को इस बीच आदेश दे

दिया था। स्त्री के स्पर्श से भोजन में जो घरेलूपन आ जाता है वही इस खाने में था। बीच-बीच में वह मेरी प्लेट पर चपातियाँ, सब्ज़ी, चटनी रखती जाती थी और स्वयं भी लेती जाती थी।

नखरा! ढोंग! पाखण्ड! मैं अपने दिमाग से यह बात कभी नहीं निकाल सकता हूँ कि यह सब अभिनय है। बिंदो मुझे बेवकूफ समझती है। बहरहाल, मैंने अपने अपमान का बदला ले लिया। एक नहीं, दो नहीं, तीन बार! अब यह पछतावा नहीं रहेगा कि मैं कुछ नहीं कर सका! मगर अब भी मेरे भीतर क्रोध शेष है। मैं इस विप्लव को सम्भाल नहीं सकता— बिंदो भी नहीं सम्भाल सकती। उसने मुझे जिस तरह नष्ट किया उसकी प्रतिहिंसा कभी नष्ट नहीं हो सकती।

खाना खाकर उठते हुए मैंने एक बार दीवारों पर उड़ती हुई नज़र डाली। उन पर सम्पन्नता की नहीं, मध्यवर्ग के अधूरेपन की छाप थी। यह अधूरापन बिंदो के चेहरे पर भी था। मुझे नशे में देख उसका मुंह सिकुड़ा हुआ था। मुझे अपने पर गौर करता देख, उसने तुरन्त अभिनेत्री की तरह अपनी भंगिमा बदल दी और प्रफुल्ल लगने लगी।

सिर चकरा रहा था। खड़ा ही हुआ था कि इच्छा हुई बैठ जाऊँ। किसी तरह कमरे के अन्दर जा मैं सोफे पर पसर गया। उसने नजदीक आ कर कहा, 'सिर दबा दूँ?'

इस हालत में भी मुझ पर व्यंग्य किया जा रहा है! बिंदो काटने से बाज नहीं आ सकती। मैंने कोई उत्तर नहीं दिया था, तब भी वह मेरे पास खड़ी हुई थी। मुझे फिर उसे गालियाँ देने की तबीयत होने लगी थी। घमंडी! धोखेबाज!

'तुम थोड़ी देर लेट जाओ।' उसने मेरा माथा दबाते हुए कहा। शायद मेरी आँखें देखकर उसे भय हुआ होगा। 'आँखें मूँद लो तो अपने आप नींद

आ जायेगी।' उसने मुझे बच्चों की तरह समझाने का प्रयत्न किया।

मेरा शरीर शिथिल पड़ने लगा था और मैं अपने-आप सोफे पर पसरने लगा था। मैंने ज्यादा पी ली है। ऐसा पहले भी हुआ है, मगर इतना नहीं। शायद यह पीने से नहीं किसी और कारण से हुआ है। मैं बिलकुल नहीं चाहता था कि मुझे बिंदो का सहारा लेना पड़े—वह मुझे सहानुभूति देने की स्थिति में हो। मगर जो-जो मैं नहीं चाहता हूँ, वही हो रहा है।

उसने बिस्तरे से उठाकर तकिया मेरे सिर के नीचे रख दिया था और मैं लगभग पड़ गया था। बिजली की तेज रोशनी में आँखें चौंधिया रही थीं और अर्द्धचेतन मस्तिष्क में सैकड़ों धब्बे सिकुड़ और फैल रहे थे। नशे में प्रतिहिंसा स्वप्न चित्र का रूप बदल कर आती है। मेरे दिमाग में केवल एक ही तसवीर थी और वह थी बिंदो को नष्ट करने की।

शराब ने भीतर भयानक बेचैनी पैदा कर दी थी और आँखों से जो कुछ भी नजर आ रहा था वह धुंधला और अस्पष्ट था। मैं एक अपंग की तरह पड़ा हुआ था और बिंदो मुझसे थोड़ी ही दूर पर खड़ी कपड़े बदल रही थी, नंगी हो रही थी। मेरे होने का शायद उसके लिए कोई विशेष अर्थ नहीं।

जो स्त्री मेरे सामने बराबर नंगी हुई हो, उसके एक बार और निर्वसन होने से मुझे अचम्भा नहीं होना चाहिए था। मगर सम्बन्धों के टूट जाने के बाद मर्यादा की दीवार फिर खड़ी हो जाती है और उसके बाद सब कुछ केवल आड़ में ही हो सकता है। बिंदो ने दीवार फिर तोड़ दी।

कभी-कभी आसमान पर थूकने की, चींटी को कुचलने की और जोर से चिल्लाने की इच्छा होती है। रोशनी में उफनते हुए, ठीक ऐसी ही इच्छा हो रही थी। मगर मैं चिल्ला नहीं रहा था, रो रहा था। गर्म आँसू मेरे गालों पर लुढ़क रहे थे। चेहरा मैंने दीवार की ओर कर लिया था ताकि

बिंदो मेरी यह हालत देख न सके। अगर मेरा बस चलता तो मैं बिंदो का गला घोंट देता।

आखिर विवेक ने भी धोखा दिया। मुझे जहाँ नहीं पहुँचना था, मैं वहीं पहुँचा; मुझे जो नहीं होना था, म वही हुआ। आत्मग्लानि के और भी क्षण आये हैं, मगर अपने आप को लेकर इतना पश्चात्ताप कभी नहीं हुआ। आँसू इसकी केवल एक अभिव्यक्ति है। अधिकतर भीतर ही रह जाता है। मैं बिल्कुल कातर हो चुका था—केवल ज़रा-से धक्के की ज़रूरत थी। दूसरों को कुचलने का हौसला रखने वाला स्वयं कितना कुचला हुआ हो सकता है, इसका अंदाजा मुझे देखकर लगाया जा सकता था।

रात को लगभग बारह बजे अचानक आँख खुलने पर मैंने पाया मैं कहीं और पड़ा हूँ। यह वह सोफ़ा नहीं था जिस पर मैं हार कर पड़ गया था। यह बिंदो के पलंग का पायताना था। मैं बिंदो के पैरों पर पड़ा हुआ था।

बिंदो के सिरहाने एक छोटा-सा बल्ब-जल रहा था जिसका नीला प्रकाश बिस्तर पर पड़ा था। मेरे जागने से बिंदो भी हड़बड़ा कर उठ बैठी।

'मैं यहाँ कैसे पहुँचा ?' मैंने निर्विकार पूछा।

'तुम बड़ी देर तक माफ़ी माँगते रहे, फिर यहाँ गिर पड़े।'

'यहाँ कहाँ ?'

'पैरों पर।' बिंदो ने डरते हुए उत्तर दिया। उसकी आँखों में सचमुच भय था।

मैंने स्वयं अपनी स्तब्धता तोड़ते हुए पूछा, 'क्या कहा था, मैंने ?'

'तुम बड़ी देर तक बड़बड़ाते रहे।' वह फिर डरती हुई बोली।

'क्या बड़बड़ाता रहा मैं ?' बताती क्यों नहीं हो!' मुझे झुँझलाहट हो आयी थी।

'तुम बार-बार माफी माँगते रहे। तुमने मुझसे कहा, 'तुमने मेरे प्यार को कभी नहीं समझा और अभी भी नहीं समझ रही हो।' मैंने बार-बार तुम्हें समझाने की कोशिश की। मगर हर बार तुम उठ-उठ कर मेरे पैरों पर गिर जाते थे और कहते थे, 'मुझे माफ करो। मुझे छोड़कर मत जाओ। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता—मैने प्रयत्न कर देख लिया। तुम नहीं जानतीं मैंने ये इतने साल कैसे बिताये। तुम जैसा चाहोगी मैं वैसे निभाऊँगा। मुझे मत छोड़ो।' यह कहकर बिंदो ने अपनी नजरें झुका लीं। मैं भी उससे आँख नहीं मिला पा रहा था।

'एक बार मैंने तुम्हें उठाकर ठीक से लिटाना भी चाहा।' उसने निगाहें झुकाये हुए ही कहा, 'मगर तुमने मुझे धकेल दिया।' तुमने कहा, 'मैं इसी लायक हूँ। मुझे यहीं पड़ा रहने दो।' तुम्हें नींद आ जाने के बाद मैंने दोबारा प्रयत्न किया। मगर तब भी तुमने मेरा हाथ झटक दिया।'

फिर उसने धीरे से कहा, 'माफी चाहती हूँ।' वह अपने को अपराधी अनुभव कर रही थी।

उसने नींद में ही मेरा कोट और टाई उतारकर अलग रख दी थी। शरीर पर कमीज और पैंट के अलावा कुछ नहीं था। मुझे लिहाफ ओढ़ा दिया गया था, इसलिए इस सारे समय में मैं सर्दी से मुक्त रहा। कुछ शराब की भी गर्मी रही होगी।

'तुम्हारे पास सिरदर्द के लिए कुछ है।' मैंने कहा और वह उठकर पास पड़ी एक अटैची खोलने लगी।

वह लगभग नंगी थी। केवल एक पेटीकोट और ब्लाउज उसे ढँके हुए थे। मैंने जुर्म किया है। मैं एक परायी स्त्री के साथ इतनी देर सोता रहा और मुझे पता भी नहीं। हद है! जुर्म का अनुभव मैं कर रहा था, बिंदो नहीं। वह बेलाग थी। इसका मतलब है उसके मन में यह परायापन नहीं।

तो फिर क्या चीज एकतरफा है, प्रेम या परायापन ?'

एक तो मैं विंदो के साथ इतनी देर सोता रहा, दूसरे मैंने उससे माफी मांगी, यह खयाल मुझे साल रहा था।

आखिर यह हुआ कैसे ? जिस स्त्री मे मैने घृणा की, जिसे मैंने कुचलना चाहा, जो मेरी निगाह मे टुच्ची थी, मैंने उसी के चरण पकड़े, उसी से प्रेम की भीख मांगी।

वह मैं था या वह मेरी प्रेत-छाया थी ? मैं अपनी ही निगाह मे गिर गया। शायद बिन्दो की भी निगाह मे मैं गिर चुका हूँ। मगर मैं सचमुच ही उससे प्रेम चाहता हूँ तो क्या कोई स्त्री ऐसे पुरुष को प्रेम देगी जो उसके पैरों पर गिरता हो !

यह बिल्कुल झूठ है कि मैं विंदो के बिना नही रह सकता। जैसे कोई अपने मन मे मंत्र दुहराता है या सबक रटता है, ठीक वैसे ही मैंने मन-ही-मन कहा। मगर यह दुहराते हुए मन आशंकाग्रस्त था। भीतर कोई कहता था कि यही सच है। तुम विंदो के बिना नही रह सकते। अपने को अब और अधिक मत आजमाओ।

मैंने अपनी आँखें मूँद ली और इस सारी घटना को भूलने का प्रयत्न किया। मगर आँखे बंद करने पर वह अभिशप्त तसवीर और भी साफ हो कर आ गयी। किस तरह मैं विंदो के पैरों पर गिरा, किस तरह मैंने उससे माफी मांगी, कैसे रोया, यह सारा दृश्य-क्रम घुमड़ने लगा।

मनुष्य का इससे बड़ा अपमान और क्या हो सकता है ! बिन्दो भी यह नही देख सकी। उसने ठीक ही कहा कि उसने मुझे बार-बार उठाने की कोशिश की। मगर मैं उसके पैरों पर गिरता रहा, अपने को इसी लायक करार देता रहा। मैंने अपने माथे पर अपना हाथ फेरा। मुझे लगा बिन्दो नंगी नहीं हुई है, दरअसल मैं नंगा हुआ हूँ।

बिंदो ने मुझे टिकियाँ के साथ पानी का गिलास थमाते हुए कहा, 'किस सोच मे पड़ गये !'

'कुछ नही ।' मैंने टिकियाँ निगलते हुए कहा ।

'तुम मुझे पराया समझते हो, न ?' उसने अपनी नीद से जागी आँखें मेरी आँखो मे डाली । 'मैं इस सारी देर में सोती नही रही, तुम्हारा ही ख़याल करती रही !'

शायद बिंदो सच कह रही थी । मगर मैं उस समय सच सुनना नहीं चाहता था । मैं नही चाहता था कि मुझे यह विश्वास होने लगे कि बिंदो मुझे सचमुच चाहती है । मैं अपनी आख़िरी लड़ाई लड रहा था ।

वह पलंग पर मेरे नजदीक बैठ गयी थी और अपनी बाँहे मेरे गले में डाल दी थी । 'तुम मुझे पराया क्यों समझते हो ?' उसने दोबारा कहा ।

बिंदो के स्वर में आत्मीयता थी । स्त्री की बाँहे बता देती है उसका यह आलिंगन झूठा है या सच—आलिंगन का झूठ सबसे पहले पकड़ मे आता है । मगर इस क्षण बिंदो के आलिंगन में झूठ नहीं था । और हो भी तो क्या फर्क पड़ता है ।

बिंदो ने मेरी ठोड़ी पर अपनी तर्जनी रख दी थी । वह मुझे प्यार कर रही थी । मुझ पर उसका कोई असर न देख उसने कहा, 'मुझे माफ कर दो । मुझे पता है तुम्हारा अपमान हुआ है । मैं यह नही चाहती थी । तुमने स्वयं ज़िद की ।'

मुझे तब भी चुप पा वह उठी । 'मुझे माफ नही करोगे । लो मैं तुम्हारे अपमान का बदला चुका देती हूँ ।' यह कहकर वह मेरे पैरो के पास बैठ गयी । फिर उसने अपना सिर मेरे पैरो पर रख दिया । हड़बड़ाकर मैं उठा । 'यह ठीक नहीं ।' मुँह से निकला । मैंने नही सोचा था कि मेरे अपमान का बदला इस तरह चुकाया जायेगा ।

मैं बिंदो के पैरों पर गिरा, इससे मेरा जो अपमान हुआ उसके लिए वह जिम्मेदार नहीं थी। वह शायद अपने को इसके लिए अप्रत्यक्ष दोषी ठहरा सकती थी। मगर मैं उसे अप्रत्यक्ष भी मुजरिम करार नहीं दे सकता था। जो कुछ हुआ था उसके लिए केवल मैं जिम्मेदार था। फिर बिंदो मुझसे माफी क्यों माँग रही थी।

जब भी कातर स्त्री को उठाया जाता है, तब वह उम्मीद करती है कि उसे सीने से लगाया जायगा। इस तरह उठकर वह एक नाचीज से इंसान बनती है और उसके बाद वह प्रेम मे अपना बराबरी का हक हासिल करती है। मुझे चाहिए था कि मैं बिंदो को उठाता और उसे दर्जा देता। मगर इसके बजाय मै छिटक कर दूर हो गया, जैसे मेरे कदमो पर कोई हत्या हुई।

बिंदो एक बार तिलमिलायी। फिर वह स्वयं ही उठी। उसने मेरे संकट को समझ लिया था। वह जान गयी कि मुझसे यह नही होगा। बल्कि इसके ठीक उल्टा होगा। मुझे उठाना होगा।

मेरे और उसके बीच मौन फिर आकर बैठ गया था। केवल मेज़ पर रखी घड़ी, जिसका डायल चमक रहा था, टिक-टिक कर रही थी। उसकी सुइयाँ आँखो को, बल्कि कलेजे को, चुभ रही थी। खिड़की के बाहर लॉन पर अन्धकार था। सड़क पर थोड़ी-सी रोशनी थी जो कुछ जगह घेरे खड़ी हुई थी।

'आज ठंड ज्यादा है!' यह कहकर वह खिडकी तक गयी, बाहर देखा और खिडकी का पल्ला बन्द कर दिया। चटाख की आवाज़ हुई और फिर उसी मनहूस और डरावनी चुप्पी ने घेर लिया।

'बत्ती बुझा दूं।' उसने कहा।

'नही, रहने दो।' अगर यह थोड़ी-सी रोशनी भी नहीं रही तो मैं

बिल्कुल ही डूब जाऊँगा।

बिस्तर पर बिंदो पूरी तरह लेट गयी थी। मैं पलंग पर अब भी बैठा हुआ था। इच्छा तो हो रही थी कि दूर जाकर सोफे पर बैठ जाऊँ; मगर ठंड के कारण हिम्मत नही हो रही थी। यहाँ लिहाफ की गर्मी शरीर को बचाये हुए थी।

बिंदो ने हाथ बढ़ाकर मुझे अपनी ओर खीचा। 'ठीक से सो जाओ।' वह मुझे बच्चे की तरह दुलार रही थी। यह दुलार बुरा नही लगा। बिंदो जान भी गयी थी कि इस समय मुझे इसी की जरूरत है।

मै लगभग उस पर झुक गया था। उसने मुझे अपनी ओर और भी खीचा और अपने ओठ मेरे ओठो पर रख दिये।

पहले ऐसा नही होता था। उन दिनो मुझे शुरुआत करनी पड़ती थी। बिन्दो को तैयार करना पड़ता था। कभी-कभी मुझे लगता था बिंदो को 'आर्गेज्म' नही होता। बाद मे उसने स्वय ही मेरी शकाएँ दूर कर दी। उसने बताया कि वह मुझे सताने के लिए ऐसा करती है।

मध्ययुगीन मन्दिरों की दीवारों पर उत्कीर्ण अप्सराओ के याचना भरे मुख और प्यासे ओठो को ऊपर उठा हुआ देखकर मन मे अनुपम सौंदर्य पैदा होता है। मगर स्वय अपने जीवन मे ऐसा प्रसग आने पर सुन्दरता नहीं, अन्धकार पैदा होता है। मोह, प्रेम और अन्धकार शायद तीनो ही उस आवेग का उत्कर्ष है जो कि स्नायु या मस्तिष्क मे हिरण की तरह चौकड़ी भरता है।

बिंदो ने अपने शरीर को ढीला छोड़ दिया था। उसका बदन मेरे सामने नगा पड़ा हुआ था। शरीर के सारे कपड़े उतर चुके थे। अब कुछ भी नहीं बचा था। बिंदो की नग्नता हमेशा ही अनिंद्य रही है। वह लोभ पैदा करती है। साधारण स्त्रियाँ जब नग्न होती हैं तब लगता है वे अपने

को उघाड़ रही है। बिन्दो के साथ कभी ऐसा नहीं हुआ। जब वह निर्वसन होती तो लगता स्नान के लिए कुंड में उतरने जा रही है।

मैंने पाया, उसके शरीर का उतार अभी शुरू नहीं हुआ है—वक्ष जरूर भारी हो गये हैं। उन पर हाथ पड़ते ही वे जरा-सा फड़फड़ाये। बिंदो की आंख खुली और झपकी। उनमे शर्म अब भी बाकी है।

वह आंखें मूंदे ही मूंदे मुस्करायी। फिर तकिये के बल उठी और मेरे सीने पर अपना कपोल चिपका दिया।

'यह कमीज।' वह फुसफुसायी। 'मगर रहने दो। तुम्हे सर्दी लग जायगी।'

'नही, मुझे सर्दी नही लगेगी।' मैंने कहा और कमीज उतारने लगा। *उसे निर्वसन और स्वय को वस्त्रो में देखकर अपनी गलती का अनुभव हुआ।*

'तब ठहरो। मैं इन्तज़ाम कर देती हूँ।' यह कहकर वह उठी और नग्न ही चलती हुई बगल के कमरे मे गयी। वहाँ से दो हीटर लाकर उसने कमरा गरम होने के लिए रख दिये।

स्त्री को कमरे मे नग्न चलते देखना अपने आप में एक अनुभव है। समूची स्त्री सजीव होती है। प्रत्येक अंग का अपना सहज विन्यास होता है और कमर से ऊपर और नीचे की बनावट में एक विचित्र विरोध होता है जिससे एकरसता नष्ट होती है और स्त्री का शरीर और भी लुभावना प्रतीत होता है।

निर्वसन खड़ी हुई स्त्री साम्राज्यो को नष्ट करने की क्षमता रखती है। पुरुष का सारा मनोबल, लाख की मीनार की तरह, पिघल कर गिरता है और जैसे-जैसे पुरुष गिरता जाता है गर्वीले स्त्री-शरीर का सौंदर्य और भी निखरता जाता है।

तृप्ति हुई ।

वह उठकर सामने पड़ा पैकेट ले आयी । जब मैंने उसमें से सिगरेट निकाल ली तो उसने माचिस की एक तीली से उसे सुलगा दिया । माचिस की रोशनी में मैंने देखा, उसका चेहरा लाल था । शर्म से, रोशनी से या क्रोध से ?

मेरा हाथ लिहाफ पर पड़ा था । वह उसी पर आकर बैठ गयी । उसके कूल्हों का दबाव मैंने महसूस किया । यह दबाव अच्छा लगा । हाथ हटाने की इच्छा नहीं हुई ।

'तुम्हारा शरीर फैल गया है ।' मैंने कहा ।

'ऊँ ?' वह कुनमुनायी ।

'तुम पहले से भारी हो गयी हो ।' उसका शरीर सचमुच मांसल था । वैसे दूर से वह लगती नहीं थी ।

उसने 'कोई जुर्म हो गया क्या ?' की दृष्टि से देखा । फिर अपने सारे शरीर का वज़न मुझ पर छोड़ दिया । यह भारी दबाव गुदगुदी पैदा करता है और स्नायुओं में रक्त की गति तेज़ करता है ।

वह मुझे ताबड़तोड़ चूम रही थी । मैं अपनी जगह पर पड़ा हुआ था । मेरी ओर से कोई चेष्टा नहीं थी । अचानक उसने मेरे कान की लोर को मसला जैसे मेरे कान उमेठ रही हो । मुझे तकलीफ हुई ।

'यह क्या कर रही हो ?' मैं झुँझलाया ।

'मैं देख रही थी कि तुम सो गये या जाग रहे हो ?' वह खिलखिलाकर हँसी । 'लगता नहीं कि तुम जाग रहे हो ?' उसने कहा, 'लगता है, केवल मैं जाग रही हूँ ।' उसने कनखी से मुझे देखा ।

यह बात सही नहीं थी । मैं निस्पंद अपने आप नहीं, बल्कि जान-बूझकर हुआ था । और यह बात वह समझ गयी थी । अपनी भाषा में वह मुझे

चुनौती दे रही थी। उसकी स्त्रियोचित चतुराई पर मुझे हँसी आ गयी।

उसने मेरे सारे शरीर पर कब्जा कर लिया था और विजेता की दृष्टि से मुझे देख रही थी। वह किस तरह छली जा रही है—मुझे छलने के प्रयत्न में। मैंने सोचा।

वह किशोरी की तरह मचली, 'तुम वायदा करो। अबकी बार नहीं छोड़ोगे।' जिस स्त्री के पैरों पर गिर कर, अभी कुछ देर पहले, मैं प्रार्थना कर रहा था, वह मुझसे आश्वासन माँग रही है! अजब गोरखधंधा है।

शायद वह मेरे भीतर के पुरुष और अपने अन्दर की स्त्री को जगा कर, सामान्य स्त्री-पुरुषों के जीवन का कौतुक देखना चाहती है। मगर क्या हम, *चाह कर भी, सामान्य स्त्री-पुरुष हो सकते हैं! बिंदो के लिए ज़िन्दगी* लिबास है, मगर मेरे लिए? मैं जैसा नहीं हूँ, क्या मैं वैसा हो सकता हूँ। 'तुमने कुछ कहा नहीं।' बिंदो ने आशंका-भरी दृष्टि से मुझे देखा!

'अच्छा रहने दो। शायद मुझे यह सवाल नहीं करना चाहिए था!' मैंने सोचा था बिंदो ने रूठ कर यह कहा होगा। उसके रूठने के खयाल से मुझे डर हुआ। रूठने का मतलब है मुझे उसे मनाना पड़ेगा यानी वह मेरे लिए अर्थ रखती है!

'तुम बहुत बदल गये हो।' उसने अपनी नंगी छातियों के बीच सेमल की रूई का मुलायम तकिया रख लिया था। 'अब तुम्हें गुस्सा नहीं आता, नफरत नहीं होती। बातें भी कम करते हो। तुम सचमुच बदल गये हो!'

'तुम्हीं ने सिखाया है!' मुझे कहना चाहिए था। यह सही है कि उन दिनों की तुलना में मैं संयत था। मगर क्या मुझे यह संयम ही प्राप्त करना था? आदमी किसी और चीज़ के लिए बड़ी-से-बड़ी कीमत चुकाता है, यहाँ तक कि अन्त में वह एकदम ही विपन्न हो जाता है। मगर अन्त में जो

चीज़ मिलती है, उसे प्राप्त करना शायद उसका कभी लक्ष्य नहीं होता।

मैं जानता था उसने यह प्रशसा-भाव से नही कहा था। इसमे सराहना न होकर, ऊब थी। उसे घुटन का अनुभव हो रहा था। पहले तकरार होती थी और उससे घुटन टूट जाती थी। कलह तोडकर जोड देती थी।

उसने एक बार और ज़ोर लगाया। मुझे उत्तेजित करने के लिए वह फिर मेरे बदन से बुरी तरह चिपक गयी थी। उसके ज़िस्म में आँच थी, जो मुझे अच्छी लग रही थी।

कई साल पहले जब बिंदो से मेरा परिचय नही हुआ था, मैंने एक बडी उम्र की सोहबत की थी। वह कई लोगों से होते हुए मेरे पास आयी थी। स्त्री के शरीर का पहला स्वाद उसी से मिला था। पहली स्त्री का शरीर ही, चाहे वह चली हुई ही क्यों न हो, अपने आनन्द की स्मृति छोड जाता है। उसे देखकर मेरे मन मे कभी कुछ नही उपजा। शायद उसे भी इस सम्बन्ध मे कोई भ्रान्ति नही थी।

मेरे नीचे पड़ी हुई, वह जब भी मुँह उठाकर मुझे चूमती, मेरे दिमाग में हमेशा एक ही दृश्य आता : कुतिया अपनी कृतज्ञता और पुलक मे गरदन उठाकर कुत्ते को चाट रही है। एक दिन उसी स्त्री ने इसी तरह चूमते हुए मुझसे, 'यू विल मेक ए वडरफुल लवर!' प्रेम के रास्ते पर मुझे किसी सभ्य लडकी ने नही बल्कि एक गलीज स्त्री ने बढाया। उसी ने मुझे पहली बार अनुभव कराया कि आदमी को प्रेम की भी ज़रूरत होती है!

मेरे मन मे उस स्त्री के लिए दया पैदा हुई थी, जो अब भी है। उसे अपने बारे में कोई भ्रम नहीं था। उसने पहले ही मान लिया था कि वह मेरे लायक नही थी। उसने कोई नखरा नही किया। ढोंग वह कर सकती थी—मगर वह शायद इसकी उलझनों को अपने अनुभव से समझती थी। उसके—मेरे सम्बन्ध साफ थे। उनमे अपराध कहीं नही था!

मगर विदो की सोहबत दूसरे तरह की थी। उसमें मांग होती थी। इस समय यह मांग और भी प्रबल थी।

मैंने उसके खुरदरे कूल्हो पर हाथ फिराया और अपनी अंगुलियों से उसकी आँखें बन्द कर दी। उसकी आँखों में प्रेम नही, भय था। मगर जैसे इस भय से लड़कर उबरते हुए उसने आँखें खोल दी और अपनी दृष्टि मुझ पर टिका दी।

सूखे कंठ, हकलाती हुई वह बोली, 'तुमने तो समाधि ही ले ली। उसका हाथ मेरी जंघा पर था। उसका आरोप गलत नही था। पुरुष के उत्तेजित न होने का अन्तर सबसे पहले औरत की समझ मे आता है।

'नही, ऐसी बात नही!' दरअसल मैं स्वयं अपने को जाग्रत करने का प्रयत्न कर रहा था। मगर निष्फल! 'जरा पानी पिलाओ।' मैं स्वयं सूखा अनुभव कर रहा था।

वह उठकर पानी लाने गयी और मैंने बत्ती बुझा दी। शायद यह रोशनी के कारण हो! अचानक सामना पड़ जाने के कारण यह हुआ होगा।

दूसरे कमरे से पानी लाते हुए उसने कहा, 'बत्ती क्यों बन्द कर दी! मुझे कुछ दिखायी नही दे रहा।' क्या वह मेरी कापुरुषता को, जिसे मैं संयम कह कर छिपा भी सकता हूँ, अपनी आँखों देखना चाहती है?

पानी पीकर कुछ तसल्ली हुई। अपने मन का डर दूर होने लगा। ऐसा कभी नही हुआ और आज भी नही होगा। मुझे उस स्त्री की बात याद आयी, 'यू विल' मेक ए वडरफुल!' वह मेरी पीठ से अपना सीना सटाये बैठी हुई थी। उसके भारी वक्षों का बोझ मुझे अच्छा लग रहा था। लगता था, वह इसी तरह बैठी रहे! फिर मैंने लिहाफ, जो शरीर पर बेतरीके पड़ा हुआ था, पूरी तरह खीच लिया और उसने उसे और स्वयं को पूरी

तरह ढंक दिया।

रक्त में चीटियाँ चली आ रही थी। धीरे-धीरे चीटियों का यह जुलूस सारे शरीर में फैल गया। कान गरम हो गये और माँस पेशियाँ उछलने लगी। बिंदो को मैंने जकड लिया था।

जिस स्त्री का दर्प मुझे चकनाचूर करता था, जो स्त्री मुझे छोटा अनुभव कराती थी, वह मेरी मुट्ठी में है। कुछ ही क्षणों मे मैं उसे कुचल डालूँगा, उसकी धज्जियाँ उड़ा दूँगा, उसकी आत्मा को, जिसे उसने सहेज कर रखा है, तहस-नहस कर दूँगा। क्या वह उसके बाद रोशनी मे मुझसे आँखे मिला सकेगी ? या अपने को इस अन्धकार मे छोड जाएगी ?

बिंदो को देखने की लालसा एक बार फिर तीव्र हो उठी। मैंने ही रोशनी गुल की थी; मैंने ही हाथ बढाकर बत्ती जला दी। बिंदो ज़रा चौकी। बात उसकी समझ मे आयी नही। मैंने सोचा था बिंदो के चेहरे पर आतंक होगा। मेरा अनुमान सही निकला। सचमुच ही उसके चेहरे पर दहशत थी। बल्कि सारा शरीर ही अकड-सा गया था। अपने को देने का भय शरीर को बेढगा, मुख को कुरूप और व्यक्तित्व को टेढा कर देता है। जब पहली बार बिंदो के साथ यह हुआ था तब यह बिलकुल सहज लगा था—उसमे एक स्कूल की लड़की का डर था। मगर इस समय यह एक जुआरी का भय लगता था।

अगर बिंदो मुझे पढ पाती तो उसे मेरे व्यक्तित्व में अपने से कही ज्यादा सलवटे नजर आती। मगर वह इस समय, परिणति के अन्तिम क्षण मे, अपने ही भय में इतनी सिकुड गयी थी कि उसकी पुतलियाँ छोटी हो गयी थी और उसमे कुछ भी चैतन्य नही रह गया था।

आदमी ही स्त्री को मूर्च्छा से जगाता है और एक दूसरे मूर्च्छा लोक मे भेजता है। स्त्री मे प्रवेश कर वह स्वयं को प्रमाणित और स्त्री को

आश्वस्त करता है।

साँस लेते हुए उसका कंठ घरघरा रहा था, ब्रोंकाइटिस के मरीज की तरह। इस प्रतीक्षा को तोड़ना ही था। ज़रा-सा ज़ोर और वह जाल टूट जायगा, जिससे छनकर रोशनी और अन्धकार दोनों ही भीतर जाते हैं।

उसने फिर अपनी आँखें बन्द कर ली थीं। वह सिहर रही थी। उसका शरीर इस शरीर से गुँथ गया था। मेरी और उसकी हिंस्र छटपटाहट में लिहाफ खिसक कर ज़मीन पर जा गिरा।

मुझे नहीं पता था कि मैं इतनी जल्दी फ़्यूज़ हो जाऊँगा। वह तब भी मुझे ताकत से पकड़े हुए थी। बहुत दिनों से रुका हुआ उबाल एकबारगी ही खत्म हो गया। पहले भी दो-एक बार ऐसा हुआ है। मगर मैंने अपने को छोटा अनुभव नहीं किया। आज जब मैं उसे लगभग जीत चुका था, इस जगह जाकर हार गया।

मैंने सोचा वह मुझे हिकारत से देखेगी और मैं उससे आँखें मिला नहीं पाऊँगा। इसलिए मैं मन-ही-मन बात बनाने लगा। मगर वैसी कोई बात नहीं हुई। बिंदो ने मुझे प्रेम से देखा। उसमें कोई शिकायत नहीं थी। क्या वह मुझे हिम्मत बँधा रही है?

क्या वह केवल इतना ही चाहती थी? मुझे डर लगा। कहीं ऐसा तो नहीं कि बिंदो केवल रस्मअदायगी चाहती थी? उसे सुख की उतनी अभिलाषा नहीं?

शायद यही सच था, क्योंकि उसके बाद बिंदो ने कोई प्रयत्न नहीं किया। उसने तौलिया मेरी ओर बढ़ा दिया। इतनी सर्दी में बाथरूम जाने की इच्छा नहीं थी। उसने ताड़ लिया।

'गरम पानी का नल है!' उसने कहा।

वह सोना चाहती थी। यह कैसे हो सकता है। इसमें ज़रूर कोई छल

है ! मेरा दिमाग फिर बेचैन होने लगा था। उसकी निश्चिन्तता समझ में नही आ रही थी।

वह कपडे पहनने की तैयारी कर रही थी। पेटीकोट उसने अपनी ओर खीच लिया था।

'रहने दो।' मैंने कहा।

'क्यो ?'

'ऐसे ही ?'

उसने इस तरह देखा जैसे सवाल कर रही हो, क्या रात भर ऐसे ही चलेगा ? हाँ चलेगा ! मेरी तबीयत हुई कहूँ।

'लिहाफ खीच लो।' मैने कहा। उसने मेरा आदेश मानते हुए जमीन पर पडा लिहाफ खीच लिया। मैने उसका और अपना शरीर गरम रजाई से ढँक दिया।

बिंदो मे फिर कपट जाग उठा है, बल्कि यह सारा स्वाँग ही इसलिए था ! वह मुझे यहाँ भी फिजूल साबित करना चाहती है ! मैं फिर चक्कर खाने लगा था ! क्या मैं उसके बारे में गलत सोच रहा हूँ।

अपने को तैयार करते बहुत वक्त नही लगा। मैं प्रतिहिंसा के साथ तैयारी कर रहा था। उसके बगल में पडे हुए मैंने उसे एक झटका दिया, जिससे उसकी बन्द पलकें खुल गयी। ये सब नखरे है। मैंने मन-ही-मन कहा।

उसने 'हाँ' या 'ना' कुछ भी नही की, निश्चेष्ट पड़ी रही। ठंडी, मरी हुई स्त्री ! कुछ समय पहले मैं मरा हुआ था, अब वह। मैं कुछ कहने जा रहा था। उसने मेरे ओठों पर अपना हाथ रख दिया। इस समय कुछ कहने से जायका खराब होगा !

वह जानती है, मैंने सोचा, कि मै दोबारा देर तक टिकूँगा। और वह

यह नही चाहती। मैं विजेता होकर उभरूँ, यह उसे बरदाश्त नहीं। वह मेरा यह रूप देखना नही चाहती क्योंकि वह मुझे इस रूप में स्वीकारना नही चाहती।

उसकी तन्द्रा को मैंने तोड दिया था। उसे जगाकर मैं उसे झंझोड रहा था। उसने एक बार मुग्ध होकर मुझे देखा, फिर बोली, 'कुछ कल के लिए भी रखोगे या सब आज ही खत्म कर दोगे!'

मैं उसे थकाये जा रहा था। स्वयं भी थक रहा था। जैसे-जैसे अपनी झुंझलाहट बढ़ती जा रही थी, वैसे-वैसे प्रतिहिंसा बढ़ती जा रही थी। यह बदला मैं किससे ले रहा हूँ? उससे? अपने आप से? या नियति से?

मेरे लिए यह बदला था। उसके लिए शायद कुछ नही था। वह अब शिथिल नहीं थी। उत्साह से हिस्सा ले रही थी। इस सर्दी मे भी पसीना छलछला आया।

अपने सबसे नंगे क्षणों मे आदमी की तबीयत गाली देने की होती है। किसी और को गाली देकर वह अपने को तुष्ट कर लेता है। स्त्री के साथ जुटे होने पर वह बहुत-सी अनर्गल बातें कह जाता है, जिनमें गाली भी होती है और अटपटी, अर्थहीन ध्वनियाँ भी। स्त्री इन सब बातों को प्यार के रूप मे स्वीकार करती है।

'तुम पीली पड गयी हो!' मैंने कहा।

मैंने सोचा था वह इससे अपमानित होगी। मगर वह जवाब मे वेश्याओं की तरह मुस्करायी।

'चोला बदल डाला है।' उसने कहा और मेरी पीठ पर अपने दोनो हाथ रखकर मुझे अपनी ओर ज़ोर से खीचा। उसमे शक्ति थी। वह अब भी निढाल नही हुई थी।

अपने थम जाने पर मैंने अपूर्व सन्तोष का अनुभव किया। वह बिलकुल

थकी चित्त पड़ी हुई थी।

'मैं नही उठूँगी।' उसने पड़े-ही-पडे कहा।

मुझे तो उठना ही था। साफ-सुथरा होकर मैंने सिगरेट सुलगा ली थी। मैं हल्का हो गया था। आँखों मे नीद चली आ रही थी। सुख को साथ लेकर आने वाली नीद !

मगर यह सुख नही, बहलावा था। आगे चलकर यही बेचैनी, पछतावे और कभी खत्म न होनेवाली परेशानी का सबब बन जायेगा, पता नहीं था।

सवेरे उठा तो पाया बिस्तर पर मैं अकेला पडा हुआ था। सामने की घड़ी मे सवा आठ बजे हुए थे। मैं हड़बडा कर उठा। दूसरे के घर, दूसरे के बिस्तर पर नीद खुलना नया जन्म लेने के बराबर है। मुझको लग रहा था जैसे मैं जहाज़ के डूब जाने पर तख़्ते के सहारे किसी अजनबी द्वीप मे जा लगा हूँ और धीरे-धीरे होश आ रहा है। जैसे-जैसे सब कुछ याद आता जा रहा था, घबराहट बढ़ती जा रही थी।

मैं दिमाग को झटका देकर याद न करने की कोशिश कर रहा था और दिमाग मुझे झटके देकर सब कुछ याद दिलाने का प्रयत्न कर रहा था।

मैंने जल्दी-जल्दी कपडे पहने और सोफे पर आ बैठा। बगल के कमरे मे जाने की हिम्मत नही हो रही थी। अगर नौकर ने देख लिया तो ? क्या मैं उससे आँखे मिला पाऊँगा। मुझे भय था मगर बिंदो को नही। वह दूसरे कमरे में नौकर को कुछ आदेश दे रही थी।

वह चाय लेकर चली आ रही थी। वह बिलकुल सहज थी। उसे देखकर नही लगता था कि उसमें कोई विकार आया। मगर मैं उससे आँख नही मिला पाया।

'चाय पी लो। नाश्ता भी तैयार है।' उसने कहा और मुझसे सटकर

बैठ गयी। मुझे अपना ही शरीर अनर्गल लग रहा था। हालांकि कमरे की सारी चीजें बिंदो ने फिर तरतीब से कर दी थी, हर चीज से जुगुप्सा हो रही थी।

किसी तरह चाय पीकर बॉथरूम गया। बाहर निकला तो बिंदो किचन मे गयी हुई थी।

चोर की तरह मैं चुपचाप कमरे से निकला। दूसरे कमरे पर एक उडती हुई नजर डाली। शैल्फ़ पर मेरी तस्वीर अब भी अपना अधिकार जमाये हुए थी। उसे क्या पता कि आदमी अपनी तसवीर से इतना अलग होता है कि उसकी कोई भी तसवीर सही नही होती!

सड़क पर आकर मैंने चाल तेज कर दी। अगर मेरा बस चलता तो मैं बदहवास भागता जाता और अगर आस-पास कही समुद्र होता तो छलांग लगा जाता।

छः

शर्म और पराजय में बँधा हुआ मैं घर पहुँचा और सीधे बिस्तर पर पड गया। अभी चेहरा अखबार से ढँक कर लेटा ही था कि फोन की घंटी बज उठी। नौकर से मैंने कहा, 'मत उठाओ।' मैं जानता था यह बिंदो होगी। घटी बडी देर तक बजती रही। फिर थोडी देर के लिए रुक कर दोबारा बजने लगी।

मुझे यह शहर छोड देना चाहिए। किसी ऐसी जगह चला जाना चाहिए जहाँ बिंदो से कभी मुलाकात न हो। मगर यह मुमकिन नही। मैं शहर नहीं छोड सकता। फिर उसे चला जाना चाहिए। वह आयी क्यों?

मेरा बचा-खुचा भी नष्ट हो गया। बिंदो ने मुझे एक झींगुर की तरह मसल दिया। मैं अब किसी भी लायक नहीं रह गया हूँ—यहाँ तक कि बिंदो के भी लायक नही।

नींद शायद पूरी नही हो पायी थी। अखबार के नीचे चेहरा छुपाए आँख लग गयी। दो-एक बार खलल हुई, जिसकी उपेक्षा कर मैं देर तक सोता रहा। करीब बारह बजे उठा। हजामत बनायी और नहाने चल

दिया।

मैं समझ नहीं पा रहा था मैं क्या करूँ। ससार के किस कोने में चला जाऊँ। बिंदो, बिंदो नही है, अभिशाप है। मैं इस अभिशाप से कैसे मुक्त होऊँ।

रात फिर दिमाग मे उतरने लगी—परीकथा की तरह! मैं जिस चीज को भूलना चाहता हूँ वही बार-बार याद आती है।

मैंने जल्दी-जल्दी खाना खाया और चुपचाप निकल पडा। विजय चौक के नजदीक जाकर घास पर पड गया। यह जगह मेरी बहुत पहचानी हुई नही थी। मगर इधर-उधर बहुत-से लोग पडे हुए थे—कुछ दफ्तर से वक्त निकालकर धूप मे अपने को सैंक रहे थे, बाकी निठल्ले थे। इन तमाम अपरिचित लोगो से घिर कर कुछ तसल्ली हुई। यहाँ कोई पहचान नही सकता था। कोई नाम लेकर पुकार नही सकता था। कोई अपने प्रेम से खलल नही डाल सकता। कोई मुझे यह अनुभव नही करा सकता था कि मै छोटा हूँ! मैं घास पर पडे हुए सैंकडों लोगों में से एक था।

मैंने कोट उतारकर अपना मुख ढांप लिया। कोई मुझे न देखे। मैं इसी तरह गुमनाम पडा रहना चाहता हूँ। सिगरेट का पैकेट सीने पर पडा हुआ था।

पास मे ताश की बाजी चल रही थी। दूर पर सतरे वाला आवाज लगा रहा था। मैं यही आकर पडा रहूँगा। यही जगह मेरी है। घर झूठ है। बिंदो झूठ है। जो भी जाना है, पहचाना है, झूठ है।

करीब घटे भर इसी तरह पडे रहने पर फिर आँख लग गयी। जब उठा तो करीब साढे तीन बजे थे। सिर मे हल्का-हल्का दर्द था। इच्छा हुई कही चाय पिऊँ। अभी उठा ही था कि दूर से एक स्त्री अपनी नजर आयी। हरा स्वेटर और अल्हड़ चाल। मैं चौका। मगर शुक्र है! पास आने पर वह

बिंदो नही निकली।

नजदीक कुछ छोटी-छोटी दूकाने थी। एक जगह रुक कर चाय पी और ब्रिटिश कौंउन्सिल की तरफ चल पडा। नीचे कुछ प्रदर्शनियाँ चल रही थी। थोडी देर देखता रहा, फिर ऊपर के तल्ले पर चल दिया जहाँ लाइब्रेरी है। किताबो और पत्रिकाओं मे मन रम जायगा।

साफ-सुथरी लाँइब्रेरी लगभग खाली थी। तीन-चार एकाग्रचित्त पाठको के सिवा कोई न था। मै एक कोने पर जाकर बैठ गया और अखबार उलटने लगा। जब राजनैतिक समाचारो मे तबीयत नही लगी तब एक मनोरंजन पत्रिका उठा ली। मगर उसने भी ज्यादा देर साथ नही दिया।

यहाँ 'हू डन इट' साहित्य होना चाहिए था। मैं बुदबुदाया। 'हू डन इट' शब्द जबान पर आते ही खयाल आया, 'हू डन इट ?' तुम या बिंदो ? मुजरिम कौन है ? क्या बिंदो वही है, जिसे मैंने जाना है या वह है जिसे मैंने नही जाना है ? क्या मैं अब भी यह दावा कर सकता हूँ कि मैंने उसे जान लिया है।

मुझे जानने की जरूरत नही है। मैंने स्वय ही अपना उत्तर दिया। और एक पास पडा मैडिकल साइस का एक जर्नल अपनी ओर खीच लिया। अपने को जानने से बेहतर है आदमी बीमारियो को जाने। मगर उसमे हम जैसे नावाकिफ़ लोगो के काम का कुछ न था—वह अनुसंधान के छात्रो की पत्रिका थी।

लगभग घटे तक अपने को इसी तरह बभाने का प्रयत्न करता रहा। छह बज गये थे और बाहर अँधेरा पूरी तरह घिर आया था। लाँइब्रेरी मे किताबे लेने और वापस करने वालो की चहल-पहल हो गयी थी।

मै उठा। उठकर दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा। अचानक अपनी पीठ पर किसी के मुलायम हाथों का स्पर्श अनुभव किया। देखा तो बिंदो थी।

'तुम ? यहाँ ?' मैं हैरत में था।

'मैं उधर बैठी थी।'

'कब से ?'

'करीब घंटे भर से। मुझे पता था तुम यहीं होगे।'

'तुम्हें कैसे पता था ?' मैंने चिढ़कर कहा।

'था !' सीढ़ियाँ उतरते हुए उसने कहा, 'मैंने कई जगहों पर तुम्हें तलाश किया। आखिर मैं यहाँ आयी !' उसने मेरी बाँह अपनी बाँह में ले ली थी। रोशनी में मैंने देखा वह पहले से ज्यादा सुन्दर और प्रसन्न लग रही थी। आँखों में उसने काजल कर रखा था। माथे पर बिंदी थी।

नीचे उतर कर मैंने उसे प्रश्न भरी दृष्टि से देखा, अब ?

'पिक्चर चलें ?' वह मचली।

मेरी ओर से कोई उत्तर न पा वह जरा सहमी। फिर मुझसे एकदम लग कर बाँहों में बाँहें डाले सड़क पर चलने लगी। मेरा हाथ मरे हुए साँप की तरह झूल रहा था।

'तुम सवेरे इस तरह उठकर क्यों चले आये थे ?' उसने उलाहना दिया।

'फिर मेरा फोन भी रिसीव नहीं किया। वह मुँह फुला रही थी।

बिंदो सचमुच कुछ नहीं समझती या बन रही है। मुझमें उसे देखने का भी साहस नहीं था।

'मुझसे नाराज़ हो ?' वह चलती-चलती मुझसे और भी लग गयी थी। सड़क पर गुजरनेवाले हमें देख रहे थे। वे सोच रहे होंगे कि कितना सुखी है यह जोड़ा। किसी को मुझे लेकर शक भी नहीं होगा। जब बिंदो को ही नहीं, तो गैर को कैसे हो सकता है।

'उधर चलें। घास पर।' बिंदो ने नहर की ओर इशारा किया।

'घास गीली है। ओस है।' मैंने धीरे से कहा।

'तो क्या हुआ?' वह जिद पर थी।

टहलता और उसे ढोता हुआ मैं नहर के किनारे तक आया। फिर एक ज़रा सूखी जगह पर बैठने की योजना बनाने लगा। तब तक उसने अपना रूमाल बिछा दिया था। 'इस पर!' उसने कहा। 'पतलून गंदी नहीं होगी।'

रोशनी और अंधकार के छायालोक में और भी कई जोड़े वहाँ दूर-दूर बैठे या टहल रहे थे। सब अपने में तन्मय थे।

'कितनी अच्छी जगह है। पहले तुम मुझे यहाँ नहीं लाये!' उसने शिकायत भरी दृष्टि से मुझे देखा। फिर खुद ही अपना सवाल कर डाला। 'शायद हाल में आबाद हुई है।'

एक युगल हमारे करीब से इत्र की गंध बिखेरता हुआ गुजरा। 'यहाँ कहीं फूल नहीं बिकते।' उसने अपना सिर करीब-करीब मेरे सीने पर टिका दिया था। मैंने कर्त्तव्यवश उसके बालों पर हाथ फेरा।

'उधर चलें।' वह मचल कर उठ खड़ी हुई। उसका इशारा एकदम अँधेरी जगह की तरफ था। शायद अँधेरा उसे अच्छा लगता है। मैं यंत्र की तरह उसके साथ चलता चला आया। मैं बैठा हुआ था और उसने अपना माथा मेरी गोद पर रख दिया। ओस की परवाह किये बिना वह लेट गयी थी।

सारा अंधकार मेरे सीने में कफ की तरह जमता जाता है। कोई रास्ता नहीं। *क्या सचमुच ही कोई रास्ता नहीं?*

'तुम्हें मुझमें कोई दिलचस्पी नहीं?' उसने आराम से पड़े हुए कहा। इस एक वाक्य से मैं बहुत घबराता हूँ। उन दिनों भी यह बात वह अक्सर कहती थी। और मुझे अपनी दिलचस्पी साबित करने के लिए बहुत से झूठे

कर्म करने पड़ते थे। इसलिए मैंने उसकी बात अनसुनी कर दी।

उसने अपनी बात दोहरायी। जब मैंने दोबारा भी न सुनने का स्वांग किया तो वह उठ बैठी। उसने घूर कर मुझे देखा। मैंने पाया उसके चेहरे पर चमक और तेजी थी, जैसा कि बिफरने के पहले होती थी। क्यों फिर वही होगा ? या कि मैं ही गलत नतीजे पर पहुँच रहा हूँ।

मैं उठा।

'कहाँ जाओगी ?' मैंने पूछा।

उसने *'क्या मतलब'* की दृष्टि मुझ पर डाली।

'घर नही जाना है ?' मैंने हौले से कहा।

'इतनी जल्दी ?' यह कहकर उसने कनखी से मुझें देखा। 'शायद तुम्हे जल्दी है।' वह मुझे ताड़ना चाहती थी।

'तो ठीक है, मैं अकेले ही चल दूंगी।' वह विद्रूप हो रही थी। वह अलग हो गयी थी। वह हठी थी, जिद्दी थी। वह जरूर जायगी।

क्षण-भर को वह ठिठकी। फिर उसकी चाल मे तेजी आयी और वह दूसरी सडक की ओर मुडने लगी।

'ठहरो।' मैंने कहा। मैं अँधेरे में खडा था। अंधकार बाहर भी था, भीतर भी। वह ठहर गयी। पास जाकर मैंने कहा, 'मैं भी चलता हूँ।'

जरा दूर चलकर मैं एक पत्थर पर बैठ गया। वह मुझसे सटकर बैठ गयी। 'तुम थक गये हो।' उसने मेरे कंधे पर अपना सिर रख दिया था। 'तुम बिल्कुल थक गये हो।' उसने कहा और मुझे जकड़ लिया, ठीक अमर-बेल की तरह। मैं उसे नही देख पा रहा था और वह मुझे नही। अँधेरे मे, दूसरी ओर मुँह फेर, बायें हाथ से अपना सीना पकडे, मैं ओक रहा था।

●